STUDY MATERIAL

PROSE & ONE ACT PLAYS

I SEMESTER

(UG - CUCBCSS)

CORE COURSE

For

B.A. HINDI PROGRAMME

(2014 Admission)

UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

Calicut University P.O., Malappuram, Kerala - 673 635

581

UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

I SEMESTER

CORE COURSE

PROSE & ONE ACT PLAYS

Prepared by

1. Dr. N. Girija,
   Chairperson, Board of Studies in Hindi UG
   Associate Professor of Hindi
   Govt. Arts & Science College,
   Calicut.
   Module - I

2. Dr. C.Balasubramanian,
   Asst. Professor,
   Dept. of Hindi,
   Govt. Victoria College, Palakkad
   Module – II, III & IV

Scrutinised by

Dr. N. Girija
Chairperson, Board of Studies in Hindi UG
Associate Professor of Hindi
Govt. Arts & Science College, Calicut.

Lay out and Settings

Computer Section, SDE.

©
Reserved

CONTENTS	PAGES
MODULE - I	05 - 11
MODULE- II	12 - 24
MODULE-III	25 - 35
MODULE-IV	36 - 43

Module I

आत्मवृत्त

'आत्मसंस्मरण' जहाँ स्व-जीवन की चुनी हुई स्मृतियों के चित्र सामने रखते हैं, वहाँ 'आत्मवृत्त' अपने जीवन का लेखा-जोखा।

यह जीवनीपरक विधा लेखक द्वारा अपने ही विषय में तटस्थ भाव से लेखा-जोखा सामने रखती है। इसमें लेखक जीवन को पीछे मुड़कर दूर तक देखता है। क्रमबद्धता के कारण आत्मवृत्त में जीवन और समय प्रवहमान और गत्यात्मक होते हैं, ठहरे हुए नहीं रहते। जैसा कि संस्मरणों में प्रायः हुआ करता है। साथ ही निजी जीवन की अनेकानेक खट्टी-मीठी स्मृतियाँ तथा जीवन में आये व्यक्तियों के आचरण, विचार एवं चरित्र उपस्थित रहते हैं।

आत्मवृत्त आत्मनिष्ठ विधा अवश्य है, लेकिन उसमें देश-काल वातावरण अपने पूरे प्रभाव के साथ सक्रिय रहता है। कैसे लेखक का व्यक्तित्व बना है, वह किन-किन परिस्थितियों के बीच से गुजरकर, कहाँ-कहाँ होता हुआ, कहाँ तक पहुँचा है-इस प्रक्रिया का जीवन्त चित्र आत्मवृत्त में बनता है। इसीलिए साहित्य की जो विधाएँ 'जीवन की आलोचना' का सच्चा प्रतिनिधित्व करती हैं, उनमें आत्मवृत्त का स्थान सर्वोपरि है। साहित्य की अन्य विधाओं में जीवन की आलोचना के अतिरिक्त भी बहुत कुछ होता है, जबकि आत्मवृत्त में जीये हुए जीवन का, भोगे हुए क्षणों का, झेले हुए सुख-दुखों का, और आदि-दैविक, आधि-भौतिक और आध्यात्मिक सुख-दुखों का सच्चा लेखा-जोखा आत्मवृत्त लेखक, अपने जीवन के पुनरीक्षण के रूप में प्रस्तुत करता है।

कहने का अर्थ है कि 'आत्मवृत्त' जीवनीपरक कथेतर गद्य रूप है। यह 'परात्मक' न होकर 'आत्मक' जीवनी-विधा है। इसमें दूसरों के द्वारा जीवन-सत्यों का उद्‌घाटन न होकर स्वयं द्वारा अपने जीये-भोगे जीवन-यथार्थ को व्यक्त किया जाता है।

रेखाचित्र

रेखाचित्र ऐसी गद्य विधा है, जिसमें लेखक अपने शब्द-कौशल से किसी एक व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना का चित्रण करता है। यह चित्रण 'स्केच' की भाँति वस्तुपरक होता है। इसमें लेखक का ध्यान व्यक्ति के बाह्य रूपाकार पर अधिक रहता है, लेकिन व्यक्ति के

आन्तरिक गुणों को भी उभारना वह नहीं भूलता अर्थात् इस विधा में बाह्य आकृति के साथ-साथ व्यक्ति का आन्तरिक व्यक्तित्व भी आकार पाता है।

रेखाचित्र किसी विलक्षण व्यक्ति को ही नायक मानकर चलता है अथवा ऐसे व्यक्ति को जिसकी विशेषताएँ लेखक और पाठक में संवेदना जगा सकें। इसमें कथानक की अपेक्षा तथ्यों के उद्घाटन और घटनाओं के प्रत्यक्षीकरण पर ध्यान रखना होता है। रेखाचित्र उन्हीं विषयों को समेटते हैं जिनसे लेखक का निकट सम्पर्क रहा हो। रेखाचित्रों में स्मृतियों का आधार आवश्यक नहीं है। रेखाचित्र लेखक के लिए सूक्ष्म पर्यवेक्षेणशील दृष्टि और रूप विधान यानी भाषा की आवश्यकता होती है। रेखाचित्र में विषय की विशदता नहीं होती, न समग्रता का प्रतिपादन, अपितु चुने हुए विषय की कुछ प्रमुख विशेषताएँ ही शब्दायित की जाती हैं। इस विधा में बिम्ब-विधान पर विशेष बल रहता है। अन्ततः रेखाचित्र कथेतर गद्य की जीवनीपरक वर्णनात्मक विधा है, जिसमें निकट सम्पर्क के किसी एक व्यक्ति, प्राणी अथवा वस्तु का प्रभावपूर्ण, वस्तुपरक और संवेदना जगाने वाला चित्रण किया जाता है। इसमें वस्तुतः चाक्षुष और अपक्षोकृत स्थिर बिम्ब होते हैं, जो जीवन का एकांगी चित्र प्रस्तुत करते हैं।

संस्मरण

गद्य की नव विकसित गद्य विधाओं में संस्मरण अथवा स्मृतिचित्र का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यह गद्य विधा भी मूलतः जीवनीपरक है, लेकिन यह 'प्रबन्धात्मक' न होकर 'ख्रण्डप्रबन्ध' की कोटि में आती है। इसमें आत्म-संस्मरणों की गणना नहीं होती, अपितु हम दूसरों के विषय में अपनी स्मृति के आधार पर जो विशेष घटनाएँ वर्णित करते हैं, वे संस्मरण अथवा स्मृतिचित्र कहे जाते हैं।

'संस्मरण' शब्द सम-स्मृ-ल्युट (अण) से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है-सम्यक् अर्थात् भली प्रकार से स्मरण। सम्यक् स्मृति। इसलिए स्मृति-वर्णन को ही संस्मरण की पहचान माना जा सकता है।

'सम्यक्' शब्द का अर्थ है पूर्णरूपेण, पूरी तरह। यानी सहज आत्मीयता तथा गम्भीरता से किसी व्यक्ति, घटना, दृश्य और वस्तु का स्मरण करना। इसलिए संस्मरण में

भावना की गहनता और यथार्थ के चित्रण के साथ-साथ लेखक स्मरण किए जीवन को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानता है और किसी अज्ञात तथ्य का साक्षात्कार करना चाहता है।

अंग्रेजी में 'संस्मरण' के लिए दो शब्दों का प्रयोग मिलता है-'मेमॉइर' तथा 'रैमिनिसेंसेज़'। लेकिन इन दोनों में थोड़ा-सा तात्त्विक अन्तर है। 'मेमॉइर' अपेक्षाकृत अधिक वस्तुपरक संस्मरण है, जबकि 'रैमिनिसेंसेज़' में लेखक अधिक व्यक्तित्व एवं व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियों को कहीं अधिक स्पष्टता के साथ व्यक्त करता है। अंग्रेजी में 'मेंमॉइर' घटनाओं के अधिकाधिक विवरण एवं ऐतिहासिक तथ्यों के व्यक्तिगत ज्ञान पर आधारित विवरण को भी कहते हैं। हिन्दी में इन दोनों के लिए प्रायः एक ही शब्द का प्रचलन है 'संस्मरण'।

माना यह जाता है कि जब कोई विख्यात व्यक्ति किसी अन्य विशिष्टता सम्पन्न व्यक्ति के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए स्वयं के भी जीवन के किसी अंश को प्रकाश में लाने की चेष्टा करता है, तब 'संस्मरण' विधा का जन्म होता है। वस्तुतः संस्मरण अतीत को सजीव करते हैं।

निबन्ध

गद्य को कवियों की कसौटी कहा गया है (गद्य कवीनां निकषं वदन्ति), इससे आगे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी गद्य की कसौटी निबन्ध निर्धारित करते हैं। उनकी दृष्टि में इसका कारण यह है कि "भाषा की पूर्णशक्ति का विकास निबन्धों में ही सबसे अधिक सम्भव होता है।" यह तथ्य कितना ही आकर्षक क्यों न हो, लेकिन इसकी गम्भीरता को देखते हुए यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि निबन्ध साहित्यिक अभिव्यंजना का सबसे कठिन रूप है। गद्य की यह केन्द्रीय विधा आधुनिक युग की देन है। व्यक्ति और समाज की मानसिक चेतना और भावानुभूति की निर्बन्ध अभिव्यक्ति का यह रूप कई कारणों से महत्त्वपूर्ण माना गया है। देखें तो निबन्ध ही एक ऐसी विधा है जिसमें व्यक्ति अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व, निजीपन, अपने दृष्टिकोण का प्रतिपादन किसी भी विषय की ओट में स्वच्छन्दतापूर्वक कर सकता है। तर्क, कथन की निजी भंगिमा, परस्पर संवाद इत्यादि का समुचित समन्वय करते

हुए निबन्ध-लेखक अपने व्यक्तित्व का प्रभाव पाठक के मानस-पटल पर अंकित कर सकता है। निबन्ध क्योंकि लेखक के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है, इसलिए वैचारिकता और आत्म-प्रकाशन का ऐसा निष्कपट, प्रभावशाली तथा रोचक माध्यम सम्भवतः अन्य विधाएँ नहीं हैं।

'निबन्ध' शब्द व्यापक अर्थ का संवाहक है। व्युत्पत्तिपरक अर्थ में नि+बन्ध् = (बाँधना) + घञ = अच्छी तरह गठा या बँधा हुआ (पदार्थ), 'निबन्ध' कहलाता है। शब्दकोश में निबन्ध का आशय है, "वह विचारपूर्ण विवरणात्मक और विस्तृत लेख जिसमें किसी विषय के सब अंगों का मौलिक और स्वतंत्र रूप से विवेचन किया गया हो।"

यात्रावृत्त

यात्रावृत्त अथवा यात्रावृत्तान्त का तात्पर्य है, किसी देश, प्रदेश, भू-भाग अथवा स्थान आदि की, की गयी यात्रा का वृत्तान्त। यह संसार संचरणशील है और अपने विकास के लिए उसमें निरन्तर गतिशीलता पाई जाती है। ऐतरेय ब्राह्मण में मनुष्य की आध्यात्मिकता और आधिभौतिक उन्नति के लिए 'चरैवेति चरैवेति' के मन्त्र द्वारा उसके निरन्तर गतिशील रहने पर जेर दिया गया है। अतः यात्रा का जीवन से अविछिन्न सम्बन्ध है। आदिम मनुष्य परम घुमक्कड़ था। यात्रा किए बिना उसका जीवन दूभर था। जीवन के साधन उसने यात्रा के बाद ही जुटाये। उसकी आज तक की प्रगति यात्रा से ही सम्भव हुई है। इसलिए यात्रा आवश्यक है। मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में यात्रा के महत्त्व को बताने के लिए एक विद्वान् तो यहाँ तक कहते हैं कि, "जो लोग घूम-फिर कर दूसरे देशों की वेशभूषा, रहन-सहन और बोली का अध्ययन नहीं करते, वे बिना सींग के बैल के समान हैं। जब आदमी समुद्र से घिरी पृथ्वी का भ्रमण करता है तब वह सज्जनों के आचरण, दुर्जनों की चेष्टा, विविध प्रकार के लोगों की उत्कंठा, विदग्ध जनों के परिहास, गम्भीर और गूढ़ शास्त्रों के तत्त्व से परिचित होता है।" कहने का अर्थ है कि यात्रा ज्ञान और शिक्षा का प्रमुख साधन है, इससे मनुष्य की बुद्धि का विस्तार होता है। उसका अनुभव-संसार समृद्ध होता है। तभी तो राहुल सांकृत्यायन, जो घुमक्कड़ी के बादशाह थे, कहा करते थे, "मेरी समझ में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कड़ी। घुमक्कड़ी से बढ़कर व्यक्ति और समाज के लिए कोई हितकारी नहीं हो सकता।"

व्यंग्य

व्यंग्य समाज की विद्रूपताओं से उत्पन्न वह रचना है, जो उसकी आलोचना कर उनका पर्दाफाश करती है। कथनी और करनी के अन्तराल से उत्पन्न यह वह अभिव्यक्ति है, जो यथार्थ की विरूपताओं को उधेड़ती हुई उसके आदर्श पक्ष की स्थापना का आग्रह लिए होती है। इस तरह व्यंग्य सामाजिक शिवत्व की एक साधना है। वह समस्त विरूपताओं के खिलाफ एक दृष्टि है, जो विभिन्न रचनाकारों की रचनात्मक प्रकृतियों के अनुकूल विविध स्वरूप धारण करती है। कहीं तो उसका स्वरूप कट्टर आलोचक के रूप में उभरता है, तो कहीं वह विनोदजन्य उपहास तक सीमित रहता है। कहीं उसकी भूमिका निर्मम चिकित्सक की होती है, तो कहीं गहन-गम्भीर चिन्तक की। साहित्यिक व्यंग्य वह औजार है, जो लक्ष्य को भेदकर तिलमिला देने की क्षमता रखता है। साथ ही जीवन के शाश्वत मूल्यों की आस्था व्यंग्य को आनन्द और उत्साह के अक्षय स्रोत का दर्जा देती है। सुधी विद्वानों ने व्यंग्य को इस प्रकार व्याख्यातित किया है-

"व्यंग्य वह है, जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो"- **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी**

"आक्रमण करने की दृष्टि से वस्तुस्थिति को विकृत कर उससे हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है।" - **डॉ. रामकुमार वर्मा**

"मेरे लिए व्यंग्य कोई पोज या अन्दाज या लटका या बौद्धिक व्यायाम नहीं, एक आवश्यक अस्त्र है।"- **डॉ. प्रभाकर माचवे**

"व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों-मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है।"- **हरिशंकर परसाई**

"सेंस ऑफ ह्यूमर ही अन्याय, अत्याचार और निराशा के विरुद्ध होने से व्यंग्य में अभिव्यक्त होता है।"- **शरद जोशी**

"समाज की कुरीतियों का भंडाफोड़ करने का कार्य प्रमुखतः व्यंग्य द्वारा ही हो सकता है। यदि उसमें हास्य भी समाविष्ट हो जाए तो रंग और भी तेज हो जाएगा।" - **रविन्द्रनाथ त्यागी**

मैंने व्यंग्य को आधुनिक जीवन और आधुनिक लेखन के एक अभिन्न अस्त्र और एक अनिवार्य शर्त के रूप में पाया है।"- **श्रीलाल शुक्ल**

रिपोर्ताज

यह सर्वविदित है कि 'रिपोर्ताज' मूलतः पत्रकारिता से जुड़ी और पत्रकारिता से ही निकली विधा है। समाचार-पत्रों के संवाददाता प्रायः समाचार-पत्र की नीति के अनुसार या फिर पाठक-वर्ग की रुचि के अनुसार समाचारों का वर्णन रोचक ढंग से करते हैं। रिपोर्ताज की विधा इन लम्बे-लम्बे रोचक वर्णनों पर ही आधारित है घटना-स्थल पर से घटना का सही-सही और रोचक वर्णन प्रेषित करने वाला संवाददाता 'रिपोर्टर' कहलाता है। 'रिपोर्टर' द्वारा लिखी गयी ख़बरों में कभी-कभी भावनात्मक संवेदना की प्रचुरता या कवित्व का समावेश रहता है; यह उसकी प्रतिभा, संवेदनशीलता और कवित्व शक्ति पर निर्भर करता है। ऐसी प्रतिभाओं द्वारा रचित और प्रेषित 'रिपोर्ट' रिपोर्ताज की श्रेणी में आती है, क्योंकि उनमें साहित्यिकता होती है। इसी बात को डॉ. बैजनाथ सिंहल ने इस रूप में रेखांकित किया है- " 'रिपोर्टिंग' का काम प्रायः संवाददाताओं का काम माना जाता है। संवाददाता किसी संवाद को यथातथ्य रूप में लिख कर सम्बद्ध समाचार-पत्रों को भेजते हैं, लेकिन कुशल संवाददाता उसमें भी कुछ आकर्षण भर देता है। इस रूप में रिपोर्टिंग एक व्यावसायिक क्रिया-व्यापार है। किसी एक घटना को घटने पर उस स्थान पर जब तक संवाददाता उसके बारे में लिखता है तो वह रिपोर्ट कहलाती है और वहीं पर उपस्थित एक साहित्यकार उसी घटना को यथातथ्य की रक्षा करते हुए एक साहित्यकार की शैली में लिखता है, तो उसका लेखन 'रिपोर्ताज' बन जाता है। इस प्रकार रिपोर्ताज घटनाश्रित तथ्यात्मक एक प्रकार की कथा होती है, जो साहित्यकता से संवलित रहती है।" कहने का अर्थ यह है कि 'रिपोर्ताज' में तथ्यात्मकता रहती है। यह तथ्यात्मकता साहित्यिकता से संवलित होती है, लेकिन इतनी 'विकृत' नहीं हो जाती कि अविश्वनीय लगे। मूल घटना का साहित्यिक दृष्टि से किया गया वर्णन 'रिपोर्ताज' के लिए वरेण्य है।

पत्र

'स्व' अथवा 'आत्म' के जीवन से जुड़ी विधा 'पत्र' भी है। जिस तरह डायरी नितान्त निजी जीवन-क्षणों के चित्र प्रस्तुत करती है, उसी प्रकार पत्र भी व्यक्ति की एक विशेष दिन, विशेष समय की मनःस्थिति के चित्र प्रस्तुत करते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि डायरी आत्म-निरीक्षण, आत्म-विश्लेषण और आत्मपरिष्करण का साधन बन जाती है और किसी अन्य को

सम्बोधित नहीं होती, जबकि 'पत्र' अन्य से संवाद स्थापित करते हैं, क्योंकि वे अन्य को सम्बोधित होते हैं।

पत्रों का महत्व सर्वविदित है। आत्माभिव्यक्ति मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अभिव्यक्ति की तृष्णा तब तक शान्त नहीं होती, जब तक मनुष्य अपने भाव तथा विचारों को किसी के सम्मुख रख नहीं देता। अभिव्यक्ति की तृष्णा साहित्य-सृजन की प्रेरक है। पत्रों में सामान्य और विशेष- दोनों ही स्थितियों में व्यक्ति मन की अभिव्यक्ति रहती है।

पत्र-लेखन नयी घटना नहीं है। यह मानव-सभ्यता के साथ-साथ विकसित प्राचीन कला है। लेकिन, एक विधा के रूप में साहित्य से इस कला का सम्बन्ध मुख्यतः आधुनिक युग में ही स्थापित हुआ। पत्र क्या है? इस प्रश्न का उत्तर बहुत सरल है, फिर भी यदि एक सर्वमान्य विचार जानना चाहें तो कहेंगे, पत्र एक लिखित सन्देश है, जो एक या अनेक व्यक्तियों की ओर से अन्यत्र उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों के पास भेजा जाता है, जिनसे कुछ कहना (व्यक्त करना) होता है। यह संदेश बड़ा भी हो सकता है, छोटा भी। किन्तु जब हम साहित्य की विधा के रूप में किसी पत्र को लेंगे, तो उस समय उस पत्र के सन्देश एवं लेखक (प्रेषक) को अधिक महत्त्व देंगे। और साथ ही उसे भी जिसके लिए पत्र लिखा गया है। बहुधा यह माना जाता है कि साहित्य की विधा के रूप में पत्र-साहित्य केवल वही स्वीकार्य है, जो किसी बड़े साहित्यकार से सम्बन्धित हो। यानी, किसी बड़े साहित्यकार द्वारा या उस बड़े साहित्यकार के लिए लिखे गये पत्र ही साहित्य की विधा में परिगणित होते हैं। हमारे विचार से यह कोई अनिवार्य शर्त नहीं है। हम तो यह मानते हैं कि सामान्य पाठकों के पत्रों का भी साहित्यिक विधा के रूप में अध्ययन किया जाना चाहिए।

समग्रतः 'पत्र' भी 'डायरी' आदि विधाओं की तरह अपने आप में एक स्वतन्त्र साहित्यिक विधा है। इसकी अपना सत्ता और अस्मिता है। यह स्वतःपूर्ण विधा है।

Module II

मेरा जीवन

- प्रेमचंद

आत्मवृत्त लेखक के अपने जीवन का लेख-जोखा होता है। यह जीवनीपरक विधा लेखक द्वारा अपने ही विषय में तटस्थ भाव से लेखा जोखा सामने रखती है। इस में लेखक जीवन को पीछे मुडकर दूर तक देखता है। क्रमबद्धता के कारण आत्मवृत्त में जीवन और समय प्रवाहमान और गत्यात्मक होते हैं, ठहरे हुए नहीं रहते। साथ ही निजी जीवन की अनेकानेक खट्टी-मीठी स्मृतियाँ तथा जीवन में आए व्यक्तियों के आचरण, विचार एवं चरित्र उपस्थित रहते हैं। उपर्युक्त बातों का लेखा-जोखा ही हिन्दी के अमर कथाकार प्रेमचंद जी ने अपने आत्मवृत्त 'मेरा जीवन' में हमारे सामने रखा है।

प्रेमचंद जी का जीवन आरंभ से ही अभावों और कठिन संघर्ष से ग्रस्त रहा था। पिता डाक विभाग में मामूली लिपिक थे। माँ सदा बीमार रहती थी। फिर भी कठिन प्रयत्न करके उन्होंने अपने जीवन का निर्माण खुद किया। नौकरी और पढाई के लिए लगातार संघर्ष करते रहे और स्कूलों के डिप्टी इंस्पेक्टर के पद तक पहुँचे थे। परंतु स्वतंत्रता आन्दोलन और गाँधीजी के आह्वान के प्रभाव में आकर नौकरी भी छोड दी थी। फिर पूरा समय लेखन में प्रवृत्त हुए। इन सारी बातों का लेख-जोखा है 'मेरा जीवन'।

'मेरा जीवन' के प्रथम वाक्य में ही प्रेमचंद अपने जीवन को सपाट समतल मैदान कहते हैं। उनके विचार में उस में कहीं कहीं गढे तो हैं, पर टीलों, पर्वतों धने जंगलों, गहरी घाटियों और खण्डहरों का स्थान नहीं है। इसलिए वे कहते हैं कि पहाडों की सैर करने के शौकीन सज्जनों को निराशा होगी। प्रेमचंद का जन्म संवत् 1937 में हुआ। पिता डाक विभाग में लिपिक थे। माँ सदा बीमार रहती थी। एक बडी बहिन भी थी। पन्द्रह साल की अवस्था में पिता ने प्रेमचंद का विवाह कर दिया और विवाह करने के साल ही भर बाद स्वर्ग सिधारे। उस समय प्रेमचंद नवें दर्जे में पढ़ते थे। घर में उन की पत्नी थी, विमाता थी, उनके दो बालक थे, और आमदनी एक पैसे की नहीं थी। घर की सारी संपत्ति पिताजी की बीमारी और क्रिया कर्म में खर्च हो चुकी थी। प्रेमचंद को वकील बनने और एम.ए.

पास करने का अरमान था। वे पांव में अष्टधातु की बेडियाँ पहनकर पहाड पर चढना चाहते थे।

पढाई के दिनों में उन के पाँव में जूते या पहनने के लिए साबित कपडे न थे। सुबह आठ बजे घर से निकलकर स्कूल जाते थे। स्कूल से साढे तीन बजे छुट्टी मिलने के बाद छह बजे तक एक लडके को पढाने जाते थे। वहाँ से पाँच मील चलकर रात को आठ बजे घर पहुँचते थे। रात को भोजन करके कुप्पी के सामने पढने बैठते थे और थकावट के मारे सो जाते थे। फिर भी हिम्मत बाँधे हुए थे। किसी तरह सेकेंड डिविज़न में मेट्रिकुलेशन पास हो गए। क्वींस कॉलेज में भरती होने की आशा नहीं थी। फीस केवल प्रथम श्रेणी में आने वाले को ही मुआफ़ हो सकती थी। उसी साल एक नया कॉलेज खुल गया। प्रेमचंद उस कॉलेज के प्रिंसिपल मि.रिचर्डसन से मिलने घर गए। प्रिंसिपल ने कॉलेज आने को कहा। कॉलेज गए। लेकिन फीस मुआफ़ न हो सकती थी। कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति की सिफारिश लाने को कहा गया। रोज सिफाँरिश के लिए भटकते भटकते वापस आते थे। अंत में हिन्दू कॉलेज की प्रबंध समिति के इन्द्रनारायण सिंह की सिफारिश मिली। उस समय प्रेमचंद के आनंद की सीमा न रही। दूसरे दिन प्रिंसिपल से मिलने का इरादा था। लेकिन घर पहुँचते ही उन्हें ज्वर हो गया। एक महीना बीमार पड गए।

एक महीने के बाद मि. रिचर्डसन से मिले और सिफारिश चिट्ठी दिखाई। प्रिन्सिपल ने तीव्र नेत्रों से देखकर पूछा-इतने दिन कहाँ थे? प्रेमचंद ने कहा- बीमार हो गया। बीमारी का नाम पूछने पर ज्वर हल्की चीज़ होने के कारण इतने दिनों की गैर हाजिरी के लिए पर्याप्त नहीं था। प्रेमचंद ने प्रिन्सिपल की दया उभारने के लिए कोई कष्ट साध्य बीमारी का नाम बताना चाहा। इसलिए प्रेमचंद ने उत्तर दिय- पैल पिटेशन ऑफ हार्ट सर! प्रिंसिपल ने प्रेमचंद की तरफ विस्मित होकर देखा और कहा- अब तुम बिल्कुल अच्छे हो? प्रेमचंद 'हाँ' कहने पर प्रवेश पत्र भरकर लाने को कहा। उसके बाद उनकी योग्यता की जांच की गई। अंग्रेज़ी में वे पास हो गए। लेकिन गणित में वे फेल हो गए। गणित उन के लिए गौरीशंकर की चोटी थी। निराश होकर प्रिन्सिपल के पास न जाकर सीधे घर चले आए। निराश होकर घर लौट आने पर भी पढ़ने की लालसा उन के मन में बनी रही। किसी तरह गणित सुधारकर कॉलेज में भर्ती होने की धुन थी। उसी बीच उन्हें एक वकील साहब के लडकों को

पढाने का काम मिल गया। वकील साहब के अस्तबल के ऊपर एक कच्ची कोठरी थी। उस में रहने लगे। एक वक्त खिचडी पकाकर खाकर लाइब्रेरी जाते थे। गणित सुधारना बहाना था। लाइब्रेरी जाकर उपन्यास आदि पढते थे। आर्थिक कठिनाई होते समय वकील साहब के साले से कभी-कभी उधार लेते थे। उधार लेने में संकोच होते समय निराहार व्रत रहते थे।

एक जाडे के दिन पैसे के अभाव में और कोई चारा न होकर प्रेमचंद अपनी गणित की किताब बेचने हेतु बुकसेलर की दुकान पर गए। वहाँ एक स्कूल के हेडमास्टर से उन की मुलाकात हो गयी। हेडमास्टर ने उन्हें अठारह रूपए वेतन पर सहकारी अध्यापक की नौकरी दिलवाई।

अपने आत्मवृत्त में आगे प्रेमचंद ने अपनी साहित्यिक यात्रा का वर्णन किया है। पहले पहल उन्होंने 1907 में गल्यें लिखनी शुरू कीं। उपन्यास उन्होंने 1901 में ही लिखना शुरू किया। उनकी पहली कहानी संसार का सब से अनमोल रत्न 1907 में जमाना में छपी। पाँच कहानियों का संग्रह 'सोजे वतन' के नाम से 1909 में छपा। उन कहानियों में 'सिडीशन' भरा हुआ है बताकर अंग्रेज़ी सरकार ने किताब जब्त कर ली। उस समय प्रेमचंद नवाबराय नाम से लिखते थे।

प्रेमचंद हमीरपूर में नौकरी करते समय उन्हें पेचिश की शिकायत पैदा हो गयी। औषधि लेने से , पथ्य में भोजन करने से, टहलने से व्यायाम करने से भी पेचिश टलने का नाम न लेती थी। तब उन्होंने तबादला कराया। बस्ती जिले में आ गए। वहाँ आकर पेचिश और बढ गई। उन्होंने छह महीने की छुट्टी ली। लखनऊ मेडिकल कॉलेज से निराश होकर काशी के एक हाकिम से इलाज कराने लगे। तीन चार नहीने के बाद थोडा-सा फायदा मालूम हुआ पर बीमारी जड से न गई। फिर बस्ती आने पर पुरानी हालत हो गयी। तब प्रेमचंद ने दौरे की नौकरी छोड दी और बस्ती हाइस्कूल में स्कूल मास्टर बन गए। वहाँ से तबदील होकर गोरखपुर पहुँचे। पेचिश पूर्ववर्ती जारी रही। वहाँ उनका परिचय महावीर प्रसाद पोद्दार से हुआ। पोद्दार जी आदि मित्रों की सलाह से उन्होंने जल चिकित्सा आरंभ की। उसका परिणाम यह हुआ कि उन का पेट बढ गया और रास्ता चलने में दुर्बलता मालून होने लगी।

उस समय अर्थात् 1921 में असहयोग आन्दोलन जोरों पर था। जालियाँवालाबाग हत्याकांड हो चुका था। उन्हीं दिनों गाँधीजी गोरखपुर आए। श्रद्धालु जनता देहातों और शहरों से दौडी चली आती थी। गाँधीजी के दर्शन के लिए बीमार प्रेमचंद भी चेत उठे। उस के दो चार दिन बाद प्रेमचंद ने अपनी बीस साल की नौकरी से इस्तीफा दे दिया। प्रेमचंद और पोद्दारजी देहात में पोद्दार जी के घर जाकर प्रचार करने हेतु चर्खे बनवाने लगे। वहाँ जाने के एक ही सप्ताह बाद प्रेमचंद की पेचिश कम होने लगी। फिर काशी चले आए और देहत में बैठकर प्रचार और साहित्य सेवा करके जीवन को सार्थक करने लगे। प्रेमचंद कहते हैं कि नौकरी की गुलामी से मुक्त होते ही वे नौ साल के जीर्ण रोग से मुक्त हो गए। इस अनुभव ने उन्हें कट्टर भाग्यवादी बना दिया। उनका दृढ विश्वास था कि भगवान की जो इच्छा होती है वही होती है, और मनुष्य का उद्योग भी इच्छा के बिना सफल नहीं होता।

नीलकंठ मोर

लेखक जब अपने शब्द कौशल से किसी एक व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना का चित्रण करता है तब रेखाचित्र का निर्माण होता है जो पूर्णतः वस्तुपरक है। लेखक वर्णनीय वस्तु की आन्तरिक तथा बाह्य विशिष्टताओं पर ध्यान देकर सतर्कता से 'स्केच' को रूपायित करता है, जो रेखाचित्र के नाम से जाने जाते है। रेखाचित्र कथेतर गद्य की जीवनीपरक वर्णनात्मक विधा है जिसमें पाठकों की संवेदना जगानेवाला चित्रण ही होता है।

आधुनिक साहित्य की मीरा के नाम से अभिहित महादेवी वर्मा हिंदी के प्रमुख रेखाचित्रकार है। उनकी रचनाओं में वेदना का चित्रण ज़रूर मिलता है। लेकिन कविताओं में जो पीडा व्यक्त है उससे काफी भिन्न है उनकी गद्य रचनाओं की वेदना। रेखाचित्रों में पीडित मानव का और निरीह पशु-पक्षियों की अनुभूतिप्रवण संवेदना का चित्रण भरा हुआ दिखाई देता है। 'नीलकंठ : मोर' महादेवीजी का एक ऐसा रेखाचित्र है, जिसमें अनेक करुण-त्रासद प्रसंग है, जो पाठकों के दिलों को आर्द्र बनाकर ही छोडेंग। नीलकंठ, राधा और कुब्जा के द्वारा प्रेम, आत्मीयता, ईर्ष्या, घृणा, वेदना, निराशा आदि का खुलकर प्रस्तुतीकरण किया है, जो पूर्णतः मानवीय संवेदनाएँ हैं।

प्रयाग शहर के नख्रासकोना एक विलक्षण प्रदेश है। दंगे-फ़साद, छुरे-चाकूबाज़ी आदि का अशुभारंभ इसी नख्रासकोने से ही होता है। महादेवीजी का इस प्रदेश से संबंध उनके ख्ररगोश, कबूतर, मोर, चकोर आदि के कारण है। सरकारी अस्पताल के सामने की पटरी पर अनेक छोटे छोटे घर हैं जहाँ इन निरीह जीवजंतुओं का व्यापार चलता है। महादेवीजी हमेशा वहाँ जाती है। छोटे छोटे पिंजडों में भरे हुए चिडियों को या अन्य जीवों को ख्ररीदकर या तो स्वतंत्र कर देती है या अपने घर ले आती है। माँग के अनुसार पैसा देने के कारण व्यापारी बडे मियाँ को भी महादेवीजी प्यारी थी।

एक दिन नख्रासकोने से गुज़रते समय बडे मियाँ ने आकर महादेवीजी की गाडी को रोका। सलाम करने के बाद उन्होंने कहा कि जिन मोर के बच्चों की माँग लेख्रिका ने पहले की थी आज वे मिल गये है। शंकरगढ से एक चीडीमार ने एक मोर और मोरनी को पकड लाया है। मारकर दवा तो ज़रूर बना सकता है। मगर लेख्रिका के लिए सुरक्षित रख्रा है। अंत में पैतीस रूपए नकद देकर महादेवीजी उन्हें घर ले आयी।

बडे मियाँ ने जब मोर के बच्चों को दिख्राया तो वे मोर के नहीं तीतर के बच्चे लग रहे थे। वही बात घर में लाने के बाद सबने कहा। घरवालों का कहना था कि ये मोर नहीं तीतर है, मोर कहकर ठग लिया है। चिढा देने के कारण उन पक्षियों के प्रति लेख्रिका का रवैया भी बदल गया। उन दोनों को लेख्रिका ने अपने कमरे में ख्रुला छोडा और दरवाज़ा हमेशा बन्द रख्रा। क्योंकि उसे अपने चित्रा बिल्ली पर भरोसा नहीं था। मोर के बच्चों ने कमरे को गुप्तावास बनाकर रख्रा था। रात को रद्दी कागज़ों की टोकरी को नया बसेरा बनाते थे। कुछ समय के पश्चात् बडी कठिनाई से उन दोनों को जाली के बडे घर में पहुँचा दिया जो लेख्रिका के जीव जंतुओं का सामान्य निवास है।

धीरे धीरे दोनों मोर के बच्चे बढने लगे और दोनों का कायाकल्प होने लगा। मोर का परिवर्तन चमत्कारिक ज़रूर है उतना चमत्कारिक नहीं थी मोरनी का। नीलाभ ग्रीवा के कारण मोर का नाम रख्रा नीलकंठ और उसकी छाया के समान होने के कारण मोरनी का नाम रख्रा राधा। दोनों का हाव-भाव, चाल-चलन, सौन्दर्य-सुकुमारता आदि अवर्णनीय है इसमें कोई तर्क नहीं है।

धीरे धीरे नीलकंठ चिडियाघर के निवासियों के नेता बन गया। सिर्फ सेनापति नहीं, संरक्षक भी। सबेरे ही ख्ररगोश और कबूतरों को एकत्र करके दाना जहाँ रख्रा है वहाँ ले जाता था और अगर किसी ने कोई गडबडी की तो अपने चंचुप्रहार से दंड भी देता था।

ख़रगोश के शरारती बच्चों के कान पकडकर नीलकंठ उठाते थे और उनके आर्तक्रन्दन के बाद ही चोंच से उन्हें मुक्ति मिलती। इस बीच उनका कर्णबेध संस्कार भी हो जाता था। मगर वे फिर कोई शरारत नहीं करते थे। कभी कबी मिट्टी में पंख़ फैलाकर विश्राम करने वाले नीलकंठ के लंबी पूँछ और सघन पंख़ों में वे छुआ-छुऔअल का ख़ेल भी ख़ेलते थे।

एक दिन जाली के घर से पानी निकलने के लिए बनी नालियों में से एक ख़ुला छोड गया और उसी मार्ग से एक साँप भीतर पहुँच गया। सबने अपनी जान बचायी मगर एक शिशु ख़रगोश साँप की पकड में आ गया। आधा शरीर बाहर और आधा साँप के मुँह में। उनका करुण रुदन उतना स्पष्ट भी नहीं था। मगर नीलकंठ, जो झूले पर बैठकर सो रहा था, ने उस व्यथा को पहचाना और एक झपट्टे में नीचे आ गया और साँप के फन को पंजों से दबाया और चोंच से प्रहार किया। ख़रगोश बच गया और साँप को नीलकंठ ने दो टुकडे कर दिये। और पूरी रात उस मृतप्राय ख़रगोश अपने पंख़ों के नीचे रख़कर उष्णता देता रहा। इस घटना से अपने सहजीवियों के प्रति उसके अपत्यस्नेह का प्रमाण सबको प्राप्त हो गया।

नीलकंठ जब मेघों की सॉवली छाया को देख़ता था तब अपने इन्द्रधनुष के गुच्छे जैसे पंख़ों को मंडलाकार बनाकर नाचता था। उस नाच में एक सहजात ताल-लय रहता था। राधा उसके समान नाच नहीं सकती थी लेकिन उसकी गति में भी एक छन्द रहता था। जब कभी लेख़िका जाली घर के पास पहुँचती थी तब नीलकंठ पंख़ों का सतरंगी मण्डलाकार छाता तानकर नृत्य भंगिमा में ख़डा हो जाता था। देश-विदेश के अतिथि अगर लेख़िका के साथ है तो वे अपने प्रति आदरसूचक समझ़कर आश्चर्यचकित रह जाते थे। यह एक नित्य क्रम भी बन गया। जो विदेशी महिलाएँ लेख़िका के साथ आयी थी। उन्होंने नीलकंठ को परफेक्ट जन्टिलमैन की उपाधि से विभूषित भी किया था।

बसन्त में आम के सुनहली मंजरियों में नीलकंठ की नीलाभ झ़लक सुनहले सरोवर में नीले कमलदलों का भ्रम उत्पन्न कर देती थी। नीलकंठ और राधा की प्रिय ऋतु वर्षा ही थी। मेघों के उमड आने से पहले उसका आहट ह्ववा में पाते ही उसकी मन्द्र केका शुरू होता था और मेघ गर्जन के साथ उसी ताल पर नृत्य का आरंभ भी होता। वर्षा थम जाने पर वह पंख़ फलाकर सुख़ाता रहता। वे दोनों एक-दूसरे के पंख़ों से टपकनेवाली बूँदों को चोंच से पी-पीकर पंख़ों का गीलापन दूर करते रहते। राधा और नीलकंठ हमेशा साथ रहते थे और दोनों में प्यार और आत्मीयता दिन-ब-दिन बढने भी लगा।

एक दिन लेखिका को किसी कारणवश नखासकोने से जाना पडा तब बडे मियाँ ने एक ओर मोरनी को दे दिया। उसके पंजों की उँगलियाँ टूटकर इस प्रकार एकत्र हो गयी कि वह खडी नहीं हो सकती थी। महादेवी जी ने उसे भी सात रुपए में खरीदी और खास देखभाल के बाद अपने ठूँग जैसे पंजों पर वह चलने लगी। उसका नामकरण हुआ कुब्जा और उसका स्वभाव उसका प्रमाण था।

नीलकंठ और राधा हमेशा साथ रहते थे। लेकिन कुब्जा को यह असह्य थी और मारने पर तुल जाती है। चोंच से मारकर राधा की कलगी और पंख नोच डाली। कुब्जा हमेशा नीलकंठ के साथ रहना चाहती थी, मगर नीलकंठ उससे दूर भागता रहा। कुब्जा का किसी भी जीव-जन्तु से मित्रता नहीं थी, न वह किसी को नीलकंठ के समीप आने देना चाहती थी। इसी दौरान राधा ने दो अंडे दिये और अपने पंखों छिपाकर वह बैठी रही। कुब्जा को जब पत चला तो उसने चोंच से मार-मारकर राधा को ढकेल दिया और फिर अंब्डे फोडकर छितरा दिये। इसके बाद लेखिका ने उसे अकेले रखा लेकिन उसने खाना पीना छोड दिया और जाली पर सिर पटक पटककर घायल कर लिया। इस कोलाहल और इससे ज्यादा राधा की दूरी से बेचारे नीलकंठ की प्रसन्नता का अन्त हो गया। वह जाली के घर से निकल भागा और कभी आम की शाखाओं में कभी खिड़की के शेड पर भूखा-प्यासा छिपकर रहने भी लगा।

महादेवीजी को देखते ही पंखों को मंडलाकार बनाने की रीति में कोई बदलाव नहीं आया, मगर अब आँखों में शून्यता भरी रहती थी। लेखिका अपनी अनुभवहीनता को स्वीकार करती हुई कहती है कि सबका मेल हो जाएगा यही मेरा विश्वास है। लेकिन तीन चार महीनों के बाद एक सुबह लेखिका ने देखा कि नीलकंठ पुँछ पंख फुलाए धरती पर बैठा है। लेखिका के पुकारने पर भी न उठा। तभी पता चला कि वह अब इस दुनिया में नहीं है। उसे कोई बीमारी नहीं थी न कोई चोट। महादेवी ने उसके मृतदेह को अपने शाल में लपेटकर संगम पर ले गयी और गंगा की धारा में उसे समर्पित भी कर दिया।

नीलकंठ के न रहने पर राधा प्रतीक्षा के भाव से द्वार पर दृष्टि लगाये बैठी रही। उनका विश्वास यह था कि कुब्जा से भागनेवाला नीलकंठ ज़रूर वापस आएगा। लेकिन कुब्जा उसे ढूँढना आरंभ किया। जाली के द्वार खुलते ही वह बाहर दौडती थी और हर पेड

ढूँढती रहती थी। एक दिन आम से उतरते से कुब्जा महादेवी की अल्सेशियन कुत्तिया कजली के सामने पड गयी अपनी आदत के अनुसार कुब्जा ने उस पर चोंच से प्रहार किया। कजली के दो दाँत उसकी गर्दन पर लग गए और लेखिका कुब्जा को बचा भी नहीं पायी। उसका द्वेष और प्रेम से भरा जीवन वहाँ समाप्त हो गया। राधा अब भी प्रतीक्षा में अकेली बैठी है। जब आकाश में काला बादल उमड आता है तब राधा अपनी केका को तीव्र से तीव्रतर करके नीलकंठ को बुलाती रहती है।

राधा, कुब्जा और नीलकंठ इन तीनों पक्षियों ने महादेवीजी के सामने पक्षिप्रकृति का एक विलक्षण चित्र ही प्रस्तुत किया। राधा और नीलकंठ के प्रति जो ममता का भाव दिल में फूटता है वह कभी भी कुब्जा के प्रति नहीं उभरता। फिर कुब्जा भी प्यार चाहनेवाली सामान्य नारी के समान सब कुछ तहस नहस कर दिया। जो भी हो इन तीनों ने मिलकर तीन अलग अलग स्वभाव का परिचय दिया वह हमेशा यादगार ही रहेगा। नीलकंठ का व्यवहार मन के भावुक परतों को ज़रूर छूनेवाला है। हमेशा के लिए अपना अमिट छाप छोडकर ही नीलकंठ समाप्त हो जाता है।

कमला

- पद्मा सचदेव

आधुनिक युग में गद्य की नई नई शाखाएँ पल्लवित और पुष्पित हो रही है उनमें 'स्मृति चित्र' या संस्मरण का स्थान अति-विशिष्ट है। यह विधा हमेशा जीवनीपरक है और अतीत को सजीव करने का प्रयास भी करती है। इसमें भावना की गहनता और यथार्थ के चित्रण के साथ-साथ लेखक स्मरण किए जीवन को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानता है और किसी अज्ञात तथ्य का साक्षात्कार करना चाहता है।

डोगरी भाषा के प्रख्यांत लेखिका एवं कवयित्रि है पद्मा सचदेव। 'कमला' नामक संस्मरण में लेखिका ने पति और समाज द्वारा तिरस्कृत एक नारी के दर्दनाक दास्तान को पूरी आत्मीयता के साथ पेश किया है। पति द्वारा ठगे जाने के बाद भी कमला के मन में उसके प्रति जो आर्द्रता और प्यार है, उसकी गहराई को आँकने में समर्थ लेखिका ने पाठकों के सामने कमला का जो चित्र रखा है वह ज़रूर हमारी आँखों को आँसू में भिगोयेंगे।

चित्तरंजन पार्क में काम की तलाश में आयी बंगाली स्त्री है कमला। लेखिका ने उसे अपने घर में काम पर रखा। पहले ही लेखिका ने ध्यान दिया कि उसके शरीर पर हर दिन नए नए चोट दिखाई देती है। पूछने पर उसने उत्तर दिया कि अंधेरे में गिर पडी। लेकिन धीरे धीरे कमला और लेखिका के बीच एक गहरा संबंध पैदा हो गया और अपनी कहानी को उसने लेखिका के सामने रखा। वह बंगाली है और पती उडीसा से है। एक बेटा है, वह गाँव में दादाजी के पास है। शादी के बाद पति बहुत अच्छा था मगर अब शराबी है और नीयत खराब है।

जब कमला बहुत छोटी थी तब से घर का काम संभालने में वह माहिर थी। उनका बाबा खेतीहर था साथ ही साथ मछली पकडने का जाल भी बनाते थे। कमला की एक जुडवा बहिन थी जो एक आदमी के चक्कर फँसकर उसके साथ शहर में चली गयी, मगर जब पेट में बच्चा हो गया तो वह आदमी कहीं चला गया। बहन घर वापस आयी। उसकी एक लडकी हुई लेकिन दो महीनों के बाद बच्ची को घर छोडकर वह उस आदमी की तलाश में निकल पडी। कलकत्ता आ गयी, छोटी मोटी काम भी करने लगी। मगर धीरे धीरे उसकी दिमाग खराब हो गयी और अब कमला से अगर रास्ते में मिलती है तो भी वह मुह घुमाकर चलती है।

कमला और लेखिका की आत्मीय संबंध दिन ब दिन गहनतर होता चला गया। दस-बारह वर्ष से करीब देखने के कारण वह घर का अपना न होने के बावजूद भी घर का अपना ही दीखता है। यहाँ तक नौबत आ गयी कि वह लेखिका को ऊँची आवाज़ में डॉटती भी है और यह भी कहती है कि "आप को कुछ पता नहीं है।"

जब कमला छोटी थी तब अपने बाबा के लिए खाना तो वही बनाती थी। बाबा और कमला के बीच इतना प्यार भरा था उतना कमला और माँ के बीच नहीं थी। जब कभी वह अपनी बाबा की बात करती है उसकी आँखें चमकने लगती है और पूरा बदन खुशी से भर उठती है।

भाई जब पढने के लिए कलकत्ता आया तब कभी कभी उन की सहायता करने केलिए कमला भी कलकत्ता आने लगी। फिर कलकत्ता के मोमबत्ती फैक्टरी में काम करनेवाले दादा के साथ रही और आसपास के घरों में काम भी करने लगी। उनकी एक मौसी थी जो दिल्ली आ रही थी उसी के साथ वह दिल्ली आ गयी। काम करके पैसा बाबा को भेजती रही। नानी ने ही कमला की शादी भी करवायी। उसका आदमी उडीसा का है, पैसा भी खूब कमाता है। उसने नानी को कुछ पैसे दिए और नानी ने शादी झट से करवा दी।

गोविन्दपुरी में एक झुग्गी किराये पर लेकर वे दोनों रहने लगे। शादी के बाद दोनों बहुत खुश थे। वह भी अपनी कमाई कमला के हाथ सौंपता था। जब बेटा हुआ तो खुशी दुगुनी हो गयी। ननद भी घर में थी इसलिए बच्चे की देखभाल भी होती थी। पैसा इकट्ठा करके कमला ने किश्तों में साढे सात हज़ार रूपए देकर झुग्गी खरीद ली। इसके बाद कमला के आदमी के घर से लोगों का आना शुरू हुआ। एक लडका दो तीन साल वहाँ

रहा था। एक बार कमला का आदमी किसी कारण से गाँव चला गया। बाद में कमला को मालूम हुआ कि उसी लडके की बहिन से अपने आदमी ने शादी रचा है। कमला का विश्वास था कि उस लडकी ने उसके आदमी को फँसाया है। कमला का पति जब नई बीवी को लेकर कमला के पास आया तो उसने उन्हें झुग्गी से निकाल दिया। बाद में पता चला कि उसके पेट में भी बच्चा है। कमला के आदमी ने उसे गिराने का नाटक रचकर कमला से ही डेढ सौ रुपए ले ली। कमला भी हज़ारों रुपए औझा व पंडितों को दिया मगर कोई फायदा नहीं हुआ। कमला के झुग्गी के पास ही किराये पर वे दोनों रहने लगे। एक लडकी भी पैदा हुई। पति नई बीवी के साथ कमला की झुग्गी में ही रहना चाहता है। कमला ने साफ साफ कह दिया कि यह मेरी झुग्गी है। नई बीवी को कमला का आदमी प्यार से ब्यूटिफुल कहकर बुलाता था। एक दिन कमला की अनुपस्थिति में उसके बहुत सी चीज़ों को कमला के पति ने ब्यूटिफुल को दे दिया था। इसलिए बाकी को अटैची में बंद करके लेखिका के घर में कमला ने सुरक्षित रखा।

कमला के फ्रिज, पलंग सब उस आदमी ने बेच डाला। पुलीस भी उसका पैसा खाने के कारण कमला के विपक्ष में है। इसलिए लेखिका ने अपना दोस्त किरण बेदी से बात की। किरण बेदी ने अपना फैक्स और टेलीफोण नंबर देकर सब ठीक करने का आश्वासन दिया। लेकिन कमला पुलीस में जाने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि उनके कथनानुसार उसका आदमी दुर्बल है, पुलीस मारेगी तो वह मर जाएगा। यह तो सच है कि वह कमला के ऊपर जुल्म करता है, मारता है, पैसा हडपता मगर, कमला पुलीस केस नहीं चाहती। सचाई यह है कि इतना सब कुछ होने के बाबजूद भी कमला अपने पति को चाहती है। वापस उसे मिलने की प्रतीक्षा में है। ब्यूटिफुल से छुटकारा वह चाहती है।

कमला का बेटा भी पिता का सच्ची वारिज़ है। ग्यारहवीं तक वह हमेशा कक्षा में फस्ट था। वज़ीफा भी मिलता था। लेकिन ग्यारहवीं के बाद मुहल्ले की एक लडकी से इश्क हो गया। कॉलेज जाना बंद हो गया। वह पढना नहीं, लडकी के साथ बैठना ज्यादा पसंद करता है। इसी बीच ख़बर आयी कि कमला का ससुर भी एक औरत से फँसा है। एक ही घर की तीन पीढियाँ एक ही रास्ते पर सवार है। जब इस बात का ज़िक्र लेखिका ने कमला से किया तब कमला ने यह कोई प्यार नहीं, उस विधवा के खेत को हडपने का खेल है। इसी मुकदमे की लडाई के बीच ही ससुर की मृत्यु भी हो गयी।

कमला का बाबा जब बीमार हो गया तो वह तंगी के बावजूद भी पैसा भेजती रही। बाद में मृत्यु की ख़बर आयी। एक हफ्ता बाद पता चला बाबा ज़िन्दा है। पाँच-छह महीनों के बाद पता चला बाबा की मृत्यु को महीना भर हो गया। फोण पर पता करवाया तो भाभी ने कहा बाबा ठीक है, चारपाई से उठ नहीं सकता। बाबा के नाम मंदिर में कुछ चढाकर वह खुश हो जाती है। इसी बीच प्रेमचक्र से ऊपर आए बेटा दूसरे चक्र की तलाश कर रहा है इसका भी पता कमला को मिलता है। वह विश्वास करती है इस उम्र में यह स्वाभाविक है। सब ठीक हो जाएगा।

कमला अपने पति से तलाख़ चाहती है। एक साल के अन्दर डायवोर्स भी मिलेगा। अब कमला के साथ ही वे दोनों रहते है। तब लेखिका ने उसे समझाया कि तलाख़ के बाद एक ही घर में रहें तो वह तलाख़ तलाख़ कैसा। इसलिए फिर घर में उसे घुसने न देना। लेकिन कमला नहीं मानी। वह कहने लगी-"गरमी में वह कहाँ जाएगा, यहाँ तो रात भर कूलर की हवा खाता है। सरदी में रजाई में सोता है।" लेखिका ने उसे समझाने की बहुत कोशिश की। तो उसने कहा कि डायवोर्स का कागज़ जब मिलेगा तब एक कॉपी पति को दूँगी। बाद में कोई झगडा करें तो पुलीस को कागज़ दिखाऊँगी। एक बार डायवोर्स हो जाने दो फिर वह डरकर रहेगा। अख़िर वह मेरे लडके का बाप है। कमला का उत्तर सुनने के बाद लेखिका को लगा कि सचमुच उसे कुछ भी पता नहीं है। और वह ख़ुद इस नतीजे पर पहुँच गयी कि उसे कोई समझ भी नहीं है।

ज़िन्दगी में बहुत कुछ खो जाने पर भी, पति द्वारा ठगे जाने पर भी, पूरी तरह से प्रताडित होने पर भी, जीने की अदम्य लालसा कमला में है। अपने बेटे के बाप के प्रति प्यार उसमें भरी हुई है। नारी की विडंबनात्मक जीवन का सही दस्तावेज़ है पद्मा सचदेव की 'कमला'। इतना सब कुछ होने के बाद भी वह ज़िन्दगी को देखकर हँसती है। नारी जीवन का एक विलक्षण चित्र ही यहाँ उभरता है।

शिरीष के फूल

निबंधकार, उपन्यासकार तथा आलोचक के रूप में प्रतिष्ठाप्राप्त आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदीजी का निबंध है शिरीष के फूल। अपनी मानवतावादी दृष्टि को प्रस्तुत करने की अदम्य शक्ति उनकी रचनाओं में स्पष्ट झलकती है। उच्चस्तरीय ललित निबंधकारों में द्विवेदीजी का प्रमुख स्थान है। देखने में अतिसाधारण लगनेवाले विषयों को महत्वपूर्ण बनाने की विलक्षण शक्ति उनकी रचनात्मक प्रतिभा में निहित है। इसका उत्तम दृष्टान्त है शिरीष के फूल।

लेखक जहाँ बैठकर अपना लेखन कार्य चला रहे हैं, उसके चारों ओर शिरीष के अनेक पेड़ है। जेठ की उस जलती धूप में शिरीष ऊपर से नीचे तक फूलों से लदकर खडा है। लेखक के अनुसार बहुत कम फूल ही इस प्रकार की गर्मी में फूलने की हिम्मत करते है। जैसे कर्णिकार और आरग्वध। शिरीष के साथ आरग्वध की तुलना भी ठीक नहीं है। वसन्त ऋतु के पलाश की भांति आरग्वध भी केवल पन्द्रह बीस दिन के लिए फूलता है। इसीलिए तो कबीरदास ने कहा "दिन दस फूला फूलिके खंखड भया पलास"। लेकिन शिरीष का फूल ऐसे कदापि नहीं है। वसन्त के आगमन के साथ लहक उठकर आषाढ तक मस्त रहनेवाला है शिरीष। चाहे भाद हो या उमस, लू हो या अन्य शिरीष कालजयी अवधूत की भांति जीवन की अजेयता को दिखाता चलता है। लेखक ख़ुद यह भी स्वीकार करते है कि वे हर फूल को देखकर मुग्ध होनेवाला भी नहीं है और नितांत ठूँठ भी नहीं है। लेकिन शिरीष के फूल ने उनके दिल में भी लहरें ज़रूर पैदा करते हैं।

शिरीष के वृक्ष बडे और छायादार होते है। वृहत्संहिता के अनुसार पुराने भारत के रईस अशोक, अरिष्ट, पुन्नाग और सिरीष के पेड को रोपकर अपनी वृक्षवाटिका की शोभा पर चार चांद लगा दी। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में बताया है कि सघन छायादार पेड पर ही झूला लगाया जाना चाहिए। पुराने कवि मौलसिरी के पेड पर ही झूला देखना चाहते है मगर द्विवेदीजी का कहना है कि शिरीष भी उसकेलिए योग्य है। डाल कमज़ोर तो ज़रूर है मगर झूलनेवाली भी कृशगात्री है। तुन्दिल नरपतियों को तो लोहे का पेड बनाकर उसपर झूला डालना चाहिए।

संस्कृत साहित्य के ही नहीं, विश्वसाहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि कालिदास ने ही शिरीष के फूलों की कोमलता का प्रचार पहले पहल किया था। कालिदास की तरह खुद द्विवेदीजी भी शिरीष के फूल के पक्ष में है। खुद कवि कालिदास ने कहा है शिरीष के फूल इतने कोमल है कि वह केवल भ्रमरों के पदों का दबाव सह सकते है; पक्षियों का नहीं। लेकिन शिरीष का बाकी हिस्सा तो उतना कोमल नहीं है। जैसे उसका फल। वह इतना मज़बूत है कि नए फूलों के निकल आने पर भी अपना स्थान नहीं छोडता। नए फल-पत्ते मिलकर धकियाकर ही उन्हें बाहर कर देते हैं। नहीं तो वहीं डटे रहते है। जैसे हमारे नेता लोग। ज़माने की रूख को भी नहीं पहचानते और स्थान छोडने के लिए भी तैयार नहीं।

द्विवेदीजी का मानना है कि अधिकार लिप्सा समय के साथ कम होनेवाली बात नहीं है। जरा और मृत्यु ये दोनों ही जगत् के अति-परिचित और अतिप्रामाणिक सत्य है। तुलसीदास ने भी इसी बात को स्वीकार किया है। इसीलिए द्विवेदीजी शिरीष के फलों से यह पूछता है कि फलते ही क्यों नहीं समझ लेते कि एक न एक दिन झडना ज़रूरी है। जब महाकाल देवता कोडे चलाते हैं तब जीर्ण, दुर्बल झडते है बाकी बचते है।

लेखक इसी बात पर ज़ोर देते है कि शिरीष एक अद्भुत अवधूत है। सुख दुःख में भी निर्लिप्त भाव से खडा है। लेखक को हमेशा आश्चर्य होता है कि जलते धूप में शिरीष को रस कहाँ से मिलता है? एक वनस्पतिशास्त्री के अनुसार शिरीष जैसे पेड वायुमंडल से अपना रस खींचता है। कबीर और कालिदास की तुलना शिरीष से ही हज़ारीप्रसाद द्विवेदीजी करते है और स्थापित भी करते है कि अवधूतों के मुह से ही संसार की सबसे सरस रचनाएँ निकली है। जो कवि फक्कड नहीं, अनासक्त नहीं और उन्मुक्त हृदय का नहीं वे कवि कहलाने योग्य नहीं है। कर्णाट राज की राणी विजितका देवी ब्रह्मा, वाल्मीकी और व्यास के अलावा किसी को भी कवि मानने को तैयार नहीं थी। लेकिन द्विवेदीजी कहते है अगर कवि बनना है तो ज़रूर फक्कड बनना है, शिरीष की मस्ती को देखना है। लेकिन लेखक का अपना अनुभव यही है कोई किसी का कभी सुनता नहीं है।

कालिदास अनासक्त योगी की स्थिरप्रज्ञत और विदग्ध प्रेमी का हृदय अपने में समानेवाले व्यक्ति थे। तुक जोडनेवाले और छन्द बनानेवाले सभी कवि नहीं होते। लेकिन कवियों के कवि के रूप में कालिदास को स्वीकार करने के लिए द्विवेदीजी पूर्णतः तैयार है। क्योंकि कालिदास का एक एक श्लोक मुग्ध व विस्मित होकर ही पढ सकते है। उदाहरण के

रूप में शाकुन्तलम् के एक श्लोक का उद्धरण लेखक करते हैं। शकुन्तला कालिदास के हृदय से निकली थी इसलिए अतीव सुंदरी थी। लेकिन राजा को लगता है कि कुछ न कुछ कमी ज़रूर है। अंत में वे शकुन्तला के कानों में शिरीष पुष्प देते है जिसके केसर गण्डस्थल तक लटके हुए थे और शुभ्र मृणाल का हार छाती की शोभा बढा रही थी। इसी श्लोक के कारण कालिदास लेखक की दृष्टि में कवियों के कवि है। अन्य कवियों की भांति सौन्दर्य पर मुग्ध, दुःख से अभिभूत और सुख से गद्‌गद् कवि नहीं, वरन् सौन्दर्य के बाह्य आवरण को भेदकर भीतर तक पहुँचकर भावरस को आत्मसात करने वाले कवि है कालिदास। जैसे अनासक्त कृषीवल जो निर्दलित ईक्षुदण्ड से रस निकाल लेता हैं।

अनसक्त होने के कारण कालिदास महान थे। आधुनिक हिंदी कवि सुमित्रानंदन पंत, कविवर रवीन्द्रनाथ सब अनासक्त थे। इस विश्व के सभी चर और अचर वस्तु किसी न किसी की इशारा तो ज़रूर देता है। शिरीष का तरु सचमुच पक्के अवधूत की भांति चिलकती धूप में भी सरस होकर खडा है। इसे देखकर यही लगता है कि धूप, वर्षा, आँधी, लू आदि अपने आप में सत्य नहीं है। धीरे धीरे द्विवेदीजी समकालीन भारतीय परिप्रेक्ष्य की ओर अपना वक्तव्य पहुँचा देता है।

जिस प्रकार धूप, वर्षा, आँधी और लू में शिरीष स्थिर रह सका है उसी प्रकार मारकाट, अग्निदाह, लूट-पाट और खून खच्चर के बवंडरों में भी हमारे देश में एक बूढा स्थिर रह सका है। इसका कारण लेखक ढूँढ निकालता है। क्योंकि शिरीष भी अवधूत है और वह बूढा भी। शिरीष वायुमंडल से रस खींचकर इतना कोमल और कठोर है वैसे ही वह बूढा भी वायुमंडल से रस खींचकर कोमल व कठोर है। उस अवधूत की याद शिरीष को देखने पर सजग उठता है और मन हूक उठती है- हाय वह अवधूत आज कहाँ है? और वह अवधूत और कोई नहीं है हमारा अपना राष्ट्रपिता गाँधीजी है।

यहाँ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी शिरीष को अवधूत की भांति पेश करके उसकी तुलना कबीर, कालिदास, पंत, टैगोर और अंत में महात्मागाँधी से करते है। यहाँ अतीत तक पहुँचकर जीवन और काव्यकला के अछूते पक्ष को उद्‌घाटित करने के लिए एक माध्यम के रूप में शिरीष का उपयोग द्विवेदीजी करते हैं। साथ ही फक्कडपन कवि व्यक्तित्व को निखारता है इसी बात का समर्थन भी लेखक करते है। संस्कृत निष्ठ पदावली से युक्त होने पर भी प्रस्तुत निबंध लालित्य और सरसता से ओतप्रोत है। परंतु ललित होने पर भी गांभीर्य की कमी भी नहीं है। कुलमिलाकर देखें तो "शिरीष के फूल" निबंध की जगत् में एक अप्रतिम रचना है।

Module III

चीडों पर चांदनी

- निर्मल वर्मा

जब साहित्यकार अपनी यात्रा के संस्मरणों को इस प्रकार लिपिबद्ध करे कि यात्रा किए गए स्थल का मूर्तरूप पाठक के समक्ष आए तो उस साहित्यिक एवं कलात्मक यात्रा विवरण को यात्रा साहित्य कहते हैं। स्थानीयता, तथ्यात्मकता, आत्मीयता, वैयक्तिकता, कल्पना प्रवणता, रोचकता आदि यात्रावृत्त के आवश्यक तत्व हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में कलात्मक एवं संस्मरणात्मकता प्रधान यात्रावृत्तों में निर्मल वर्मा कृत "चीडों पर चाँदनी" का शीर्षस्थ स्थान है। निर्मल वर्मा के गद्य में कहानी, निबंध, यात्रावृत्त और डायरी की समस्त विधाएँ अपना अलगाव छोडकर अपनी चिन्तन क्षमता और सृजन प्रक्रिया में समरस हो जाती है। आधुनिक समाज में गद्य से जो विविध अपेक्षाएँ की जाती हैं वे यहाँ एकबारगी पूरी हो जाती है।

निर्मल वर्मा अपने बचपन के शिमला के वे दिन नहीं भूलते। सर्दियाँ शुरू होते ही शहर उजाड हो जाता था। आसपास के लोग बोरिया-बिस्तर बाँधकर उतराई शुरूकर देते थे। बरामदे की रेलिंग पर सर टिकाए लेखक और उन के भाई-बहन उन लोगों को बेहद ईर्ष्या से देखते रहते जो दूर अजनबी स्थानों की ओर प्रस्थान कर जाते थे। चीड के साँय-साँय करते पेड, खाली भुतहे मकान, बर्फ में सिमटी हुई स्कूल जानेवाली पगडंडी आदि को देखते रहते थे।

'चीडों पर चाँदनी' यात्रावृत्त का आरंभ निर्मल वर्मा ने अपने बचपन की उपर्युक्त यादों से किया है। बचपन में शिमले के पहाडी वातावरण में रहते समय लेखक और उनके भाई-बहन बालोचित उस्तुकता के साथ एक दूसरे से प्रश्न पूछा करते थे कि 'इन पहाडों के पीछे न जाने क्या होगा?' उन दिनों पहाडी इलाके में पहाडों के संग रहने के कारण उन्हें छुट्टी लेकर कहीं जाने की ज़रूरत महसूस नहीं होती थी। पहाड हमेशा लेखक और उनके भाई बहनों के खेलों और सपनों में होते थे।

शिमले का वह घर बरसों पहले छूटने पर भी उसके बाद बडे होने पर कई छोटे बडे हिल स्टेशनों के होटलों में रहने पर भी पहाडों से संबंधित प्रश्न की रहस्यमयता लेखक के मन में वैसी ही बनी रही। टॉमस-मान का मैजिक माउण्टेन पढने के बाद लेखक को पता चलता है कि स्विटजरलैंड की पहाडी अनुभूति कई बार उन्होंने बचपन में शिमला में महसूस की थी।

बचपन में रात को सोते समय आकाश साफ होता था। दिसंबर के निविड गहन अंधकार में ड्राइंग-पेपर पर धूमिल रेखा-चित्र-सी स्तब्ध, निश्चल दिखाई पडने वाले पर्वतों और उन पर्वतों के आगे ओर-छोर समेटकर घुटनों पर झुककर गुमसुम प्रार्थना करने जैसे दिखाई पडने वाली घरती के सुन्दर बचपन के चित्र लेखक ने यहाँ खींच डाला है। उन चित्रों को आँखों में बसाकर वे भाई-बहन सो जाते थे। सुबह होते ही लेखक सोते भाई-बहनों को जगाते थे। कंबल ओढकर सब खुली खिडकी के सामने बैठ जाते थे। रात सोते वक्त देखे पहाडियाँ कहाँ हैं, स्कूल जानेवाली पगडंडियाँ, खूबानी का पेड, डाक खाने के नीचे पानी का बंबा सब कहाँ है? बर्फ के सफेद पर्दे में सारी चीज़ें छिप गई हैं। यह देखकर उन्हें ऐसा लगता था कि यह शिमला नहीं और कोई जगह है। पिछली रात गिर पडी बरफ के संबंध में वे नहीं जानते थे।

खिडकी के सामने खडे उन्हें पुराने बरफ चिपके देवदार वृक्ष 'सान्ता क्लॉज' जैसे लगता था। टेलिग्राफ के तार बरफ के परतों में लिपटकर सफेद रस्सियों से लगते थे। उन रस्सियों पर बर्फ के 'आइसिकल' फर में लिपटी सफेद गिलहरियों से नीचे लटक आते थे। धूप निकलने पर बर्फ से ढँकी पहाडियों के 'मोजायक' चेहरों को पाउडर पफ-सा बादल पोंछ जाता था। बर्फ और बादलों का यह चिरन्तन खेल नारकण्डा, डलहौजी, शिमला हर जगह उन्होंने देखा है। लेकिन गुलमर्ग की एक चाँदनी रात में जो दृश्य लेखक ने देख था, वे कभी न भूल पाए।

अप्रैल के प्रारंभिक दिन थे। हवा चाकू की तरह पैनी थी। टूरिस्टों का आगमन शुरू नहीं हुआ था। जिस होटल के कमरे में लेखक ठहर रहे थे उसके अलावा बाकी सब कमरे खाली थे। आधी रात को हवा की गति तेज होने पर वे दरवाज़ा बंद करने हेतु उठे होंगे। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। कमरे में हल्की फीकी सी चाँदनी झाँक रही थी। उनकी

दृष्टि अंधकार को पार करते हुए खिलनमर्ग की हिमाच्छादित चोटियों पर जा टिकी। चाँदनी के छुई-मुई,से सिलमिलाते कण बर्फ पर फिसल रहे थे। बादल, बर्फ, चाँदनी तीनों के अलग-अलग रंग थे, अलग-अलग लय थी। लेखक को लगा कि किसी मायावी संगीत ने पूरे वन्य स्थल को समेट लिया है। पहाडों पर चाँदनी के अद्भुत, सम्मोहक मायाजाल का दृश्य देखकर विस्मित होकर उन की आँखें मूँद जाती हैं। वह सौन्दर्य एक साथ आतंकित और आकर्षित करनेवाला था। उसके मोहपाश में बँधना उतना ही यातनामय था जितना उस से मुक्त होना।

जाखू की पहाडी से सटा साढे सात सौ फीट ऊँचाई पर लेखक का स्कूल था। हर शाम बस्ता झुलाते हुए वे पहाडी छायाओं के साथ नीचे उतरा करते थे। क्षण-क्षण रंग बदलती पहाडी छायाओं का सुन्दर वर्णन लेखक ने यहाँ किया है। पहाडों पर धूप स्वयं अंधेरे में सिमटकर रात हो जाती है। इसलिए लेखक कहते हैं कि पहाडी धूप कभी मरती नहीं, सिर्फ अपना रंग बदल लेती है।

कालका और शिमला के बीच उपेक्षित हिलस्टेशन सोलन की पहाडियाँ खामोश रहती है। शाम को सिर्फ पहाडी चारवाहों का गीत स्वर हवा में तैरता हुआ वहाँ सुनाई पडता है। वहाँ मोटर रोड से ज़रा नीचे बित्ते भर का चौकोर खोखल है- चारों ओर चीड के घने झुरमुटों मे धिरा हुआ। खोखल बहुत खामोश है। वहाँ सफेद पत्थरों पर काई जमकर अक्षर मिट गए हैं। शाश्वत मौन के दायरे में पत्थर सो रहे हैं। झरते पत्तों के पीले ढेर में पत्थर दब गए हैं। लेखक हर शाम वहाँ जाते थे और खामोश पत्थरों को देखते थे। वहाँ पत्थरों की खुशबू है। लेखक को ऐसा लगता था कि पेडों की छायाओं के साथ पत्थरों का मंच हिल रहा है और पहाडियों के एम्फी थिएटर में किसी अनजान अजीब यात्री की पैरों की थाप सुनाई देती है। जैसे-

हज़ देअर एनी बॉडी देअर? सेड द ट्रैवेलर

नॉकिंग ऑन द मूनलिट डोर

लेखक पूछते हैं कि कौन है यह अजनबी यात्री- चाँदनी, पहाडी, हवा या मृत्यू?

अचानक लेखक का ध्यान भटककर नौ हज़ार फीट ऊँचाई पर स्थित नारकण्डे के डाक-बंगले, वहाँ के पहाडी मंदिर और मंदिर के चारों ओर टँगे चिथडों की वर्षों पहले की स्मृतियाँ ताज़ी हो जाती हैं। नारकंडे की वह रात डलहौज़ी की सुनसान सडकों पर भटकते हुए सहसा लेखक की आँखों के सामने घूम जाती है। उन्हें ऐसा महसूस होता है कि वर्षों पहले की धूंध नारकण्डे के डाकबंगले से निकलकर अतीत की अंधेरी घाटियों को पार करती हुई उनके होटल के आगे ठिठक गई है। वे भीमताल, झील के पश्चिमी कोने के टापू, टापू पर गिरने वाले गूलार की स्मृतियों में निमग्न हो जाते हैं। सुबह, दोपहर, शाम के क्षण-क्षण बदलते रंगों के साथ झील अपना आवरण उतारकर फिर नया रंग ओढ लेती है या भंगिमाएँ बदलती है। शाम की फैलती छायाओं में भीमताल का द्वीप डूब जाता है। रात की घनी नीरवता में सब कुछ धीरे-धीरे सिमट जाता है। लहरें शांत हो जाती हैं। लेखक को दूर टापू में गूलरों के गिरने का स्वर सोते-सोते भी सुनाई दे जाता है- टप, टप, टप।

संक्षेप में हिन्दी साहित्य के इतिहास में कलात्मक एवं संस्मरणात्मकता प्रधान यात्रावृत्तों में चीडों पर चाँदनी का स्थान शीर्षस्थ है।

कर कमल हो गए

- हरिशंकर परसाई

हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकारों में हरिशंकर परसाई जी का नाम अग्रणी है। हिन्दी साहित्य में वे एक सशक्त, पैने व्यंग्यकार और कहानीकार के रूप में जाने जाते हैं। 'कर कमल हो गए' परसाई जी का एक बहु चर्चित व्यंग्य लेख है। इस में लेखक ने करारा व्यंग्य किया है। लेखक कहते हैं कि पिछले महीने से उनके अपने हाथ भी कमल हो गए हैं। कारण यह है कि उनके पास तीन कॉलेजों के समारोहों के निमंत्रण पत्र हैं। उन निमंत्रण पत्रों में श्रीमान या श्रीमती जी से कहा गया है कि उद्घाटन लेखक के करकमलों से होगा। लेखक वह कर भी आए। वे चरण कमलों से मंच पर चढे, कमल नयनों से वहाँ सभा में और मंच पर उपस्थित लोगों को देखा, कर कमलों से फीता काटे और मुख कमल से भाषण दे डाले। उन लोगों ने सिर्फ लेखक के हाथों को कमल कहा था, लेकिन इस पुनीत कार्य से लेखक ने अपने पूरे शरीर को कमल बना दिया। वे कहते हैं कि ऐसा सौभाग्य सिर्फ देवताओं का

काम ही करते हैं। आकाशवाणी करते हैं। रेडियो से बोलते हैं। हिन्दी में रेडियों का नाम भी आकाशवाणी है। इस प्रकार वे विनोबा भावे से ज्यादा गाँधीजी के मार्ग पर चलते हैं। जिस मार्ग से वे रोज़ निकलते हैं उसका नाम ही महात्मा गाँधी मार्ग है। नाम से आदमी का उद्धार हो जाता है। कभी कभी उल्टे नाम तक से उद्धार हो जाता है। वाल्मीकी मरा-मरा कहने से राम ने उन्हें सीधे स्वर्ग भेज दिया। बडे आदमी छोटा अहसान करके प्रोपेगेंडा स्टंड साधते हैं। लेखक के विचार में वैष्णव इस स्टंड को समझे ही नहीं और स्तुति गाने लगे।

लेखक के एक मित्र के कर भी कमल हो गए। उन के कर कुछ बेहत्तर क्वालिटी के बने, क्योंकि वे अमुक मौसम में पाँच उद्घाटन कर चुके हैं। लेखक और मित्र एक दूसरे के हाथ उलट-पलटकर देखते हैं और अचरण में मित्र पूछते हैं कि एकाएक दोनों के हाथ कैसे कमल हो गए हैं? सचमुच बात क्या है? लेखक ने भरसक प्रयास किया कि अपने हाथ कमल न हो जाएँ। फिर भी एकाएक कर कमल हो गए। अब वे परेशान हैं। परेशानी का कारण यह है कि लेखक देख रहे हैं। वे लोग कर कमलों से उद्घाटन करने जाते हैं और भाषण के लिए मुख कमल खोलते हैं, तो माइक की तबीयत चाँटा जड देने की होती है। कमलवाले मुँह खोलते हैं कि लडके चिल्लाते हैं-"भाषण नहीं नौकरी ढो।" उद्घाटक बहुत सँभलकर भाषण देते हैं-"यह देश तुम युवकों का है।" लडके 'बकवास बंद करो' बताकर चिल्लाते हैं। वे आगे कहते हैं, 'इस देश का तुम्हें निर्माण करना है। लडके फिर कहते हैं, 'चुप रह बे!' वे जारी करते हैं, हमें तुम से बडी बडी आशाएँ हैं। लडके 'शटप' बताकर चिल्लाते हैं। फिर स्थिति बहुत बूरी हो जाती है। घेराव, नारे जूता फेंकना और पिटाई सब कुछ हो जाता है। इस के फलस्वरूप कमलवाले कॉलेजों में जाने से डरते हैं। उद्घाटकों की कमी हो जाती है। दूसरी ओर जूता मारने वालों को जूता मारने के लिए कमल तो चाहिए ही। तब लेखक जैसे लोगों के कर कमल बना दिए जाते हैं। लेखक कहते हैं कि सार्वजनिक जिन्दगी में आदमी कमल होने और कमल पर जूता पडने के अवसर आ जाते हैं।

अखबार में एक व्यक्ति का चित्र है, उनके हाथ पिछले पन्द्रह सालों से कमल हैं। सैकडों निमंत्रण पत्र उनके कमल बनने के प्रमाण हैं। कल एक विश्वविद्यालय में मुख कमल से अच्छी अच्छी बातें कहते हुए वे पिटे गए। लेखक व्यंग्य करते हैं कि आजकल अच्छी बातें कहने वाले ज्यादा पिट रहे हैं। अब अच्छी बातें कहने का अधिकार लोग किसी को देना नहीं

चाहते। लेखक पूछते हैं कि जिस देश में अच्छी बातें कहने से आदमी पिट जाए, उस में अच्छी बात कहनेवालों ने क्या गजब न किया होगा?

कल मुख कमल से अच्छी बातें कहते हए जो पिट गए थें, वे मुस्कुराते हुए पालम हवाई अड्डे पर विदेशी अतिथि का स्वागत कर रहे हैं। विदेशी अतिथि का मुस्कान देखकर ऐसा लगता है कि वे भी अपने देश में पिट गए हैं। लेखक व्यंग्य करते हैं कि जो जितना पिटता है, वह उतना ही अच्छा मुस्कुराता है। परसाई जी व्यंग्य करते हैं कि इस कोटि के लोगों ने हर चीज़ का शील भंग हो जाने दिया है, पर शर्म के शील की रक्षा की है। इसके बाद वह अपने कर कमलों से दो दर्शनी हुंडियाँ निकालेगा- एक चीन की और दूसरी पाकिस्तान की और फौरन भुगतान करा लेगा। फिर वह किसी जादू से चीन और पाकिस्तान के बच्चों को डराने 'आप के देश की महान संस्कृति है। हमारा कमल कहते है कि हम विश्वबंधुत्व मानते हैं अर्थात् अपने भाई के सिवा बाकी दुनिया भर को भाई मानते हैं।

गडबडी और पिटाई आदि की वजह से अब कमल पुलिस की सुरक्षा में ही मिलते हैं और खिलते हैं। परसाईजी कहते हैं कि पुलिस की सुरक्षा में खिलने वाले कमलों पर नृतत्वशाक्तियों को नहीं वनस्पतिशास्त्रियों को अध्ययन करना चाहिए। परंपरागत कमल सूर्य को देखकर खिलता है, सूर्यास्त पर बंद हो जाता है। नया कमल पुलिस को देखकर खिलता है और पुलिस के अभाव में मुरझा जाता है।

लोग लेखक को कमल बनाने पर तुले हैं तो उनकी चिन्ता बढ जाती है। वे हरगिज अच्छी बातें नहीं कहेंगे। अगर अपने मुख कमल से कोरी अच्छी बातें करें तो सामने बैठे लोग जूता मारेंगे। लेकिन समस्या यह है कि बहुतों के पैरों में मारने के लिए जूते नहीं हैं। इसलिए परसाई जी व्यंग्य करते हैं कि संविधान में जूते मारने का बुनियादी अधिकार होना चाहिए। रोटी, कपडा मकान न होने पर भी पाँवों में जूता जरूर होना चाहिए। लेखक 'उद्घाटन' को भी बुरा शब्द मानते हैं। उन के विचार में साहित्य में विद्रोही पीढी कहनेवालों में विद्रोह नहीं है। उन के विचार में विद्रोही पीढी का उद्घाटन समारोह नहीं 'विस्फोटन समारोह' होना चाहिए।

लेखक कहते हैं कि वे सफल कमल होने की पूरी कोशिश करेंगे। सारे हथकंडे सीख लेंगे। क्योंकि हमारे यहाँ गुरुओं की कमी नहीं है। प्रत्येक जगह समारोह के उद्घाटन हेतु जाते समय वहाँ की भूमि को पुण्य भूमि कहकर जेब से घूल की पुडिया निकालकर मस्तक से लगाने वाले एक गुरू का जिक्र लेखक ने किया है। लेकिन यह गुरू नगर में जाकर फेल हो जाते हैं। इस प्रकार अच्छे कमल बनने के कई उपाय हैं। एक तरकीब हर मौके पर काम नहीं करती।

लेखक के मित्र कहते हैं- अपने हाथ एकाएक कमल कैसे हो गए? आखिर यह क्या हो गया? मित्र ही सोचकर जवाब भी देते हैं- हम लोग बुद्धिजीवी हैं। बुद्धिजीवी का रुतबा बढ रहा है। अंत में परसाई जी व्यंग्य करते हैं कि इस देश के बुद्धिजीवी सब शेर हैं। पर वे सियारों की बारात में बैण्ड बजाने वाले हैं।

जहाँ आकाश नहीं दिखाई देता

- विष्णु प्रभाकर

रिपोर्ताज विधा का हिन्दी नामकरण रिपोर्ट के आधार पर हुआ है। किसी घटना की कलात्मक एवं रस-संवेद्य साहित्यिक रिपोर्ट को ही रिपोर्ताज कहते हैं। यह मूलतः पत्रकारिता से जुड और पत्रकारिता से ही निकली विधा है। 'जहाँ आकाश नहीं दिखाई देता' हिन्दी साहित्य के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित एक बहुचर्चित रिपोर्ताज है।

कलकत्ता नगर के जीवन पर आधारित अपने रिपोर्ताज के आरंभ में लेखक आकाश की ओर देखते हैं। आश्चर्य की बात है कि तब तक वे आकाश नहीं देख सके थे, उस क्षण दिखाई देता है। नगर जीवन के शोरगुल और प्रदूषण भरे कलकत्ते के आकाश पर उन के विचार में ऐसा कुछ छाया रहता है जिसे न कुहरा कह सकते हैं, न धुंध, न धुआँ और न शोर। वे कहते हैं कि असल में वह सब कुछ का मिश्रण है। यहाँ वे एक टिप्पणी करते हैं कि निखालिस तो इस युग में विषय भी नहीं है, सब कहीं मिलावट ही मिलावट दिखाई पडता है।

संध्या समय है। सहसा लेखक के अकेलापन को कुचलता हुआ एक धक्का, एक रेला चारों ओर फैल जाता है। कलकत्ते के नारकीय नगर जीवन में न आकाश दिखाई देता है और न धरती पर पैर पडते हैं। वहाँ हावडा का विश्वविख्यात लौह पुल है। पुल के नीचे शिथिल, बदरंग किसी बिफरी-धनी प्रौढा के समान गंगा बह रही है और ऊपर मानव की तेज धार की भीड है जो भूख के विराट रूप के समान सब कुछ को निगलने के लिए लपकी जा रही है। इस स्थिति में लेखक तूफान में पडे तिनके के समान विविश, विभ्रांत होकर उड रहे हैं।

कलकत्ता में सर्वत्र जीविका की मृगतृष्णा के पीछे अकेले भागनेवाले आदमी हैं। उन में फैक्टरियों, दफ्तरों और दुकानों के बाबुओं और मज़दूरों से लेकर फुटपाथों, बाइलेनों के जेबकतरों और चोरबागान के साहूकारों से लेकर रामबागान की वेश्याएँ तक हैं। बेतहाशा दौडनेवाली बसों और ट्रामों से कलकत्ता नगर का दम घुट रहा है। सब कहीं भाग दौड है। ताडा ताडी आश्वी रे, ताडा ताडी जा रे। मनुष्य की उतावली पदचाप, ट्राप की घडघडाहट, बस के इंजन की फूत्कार, सब का यही अर्थ है-ताडाताडी, ताडाताडी, चरैवेति आधिभौतिक उन्नति के लिए उस के निरंतर गतिशील रहने पर जोर देनेवाले ऐतरेय ब्राह्मण के 'चरैवेति चरैवेति' महान मंत्र का उल्लेख किया है।

लेखक कहते हैं कि यह वही कलकत्ता है जिसकी सडकों पर भूख से या अकाल से तडपकर लाखों लोग मर गए। इसी कलकत्ता ने ही कला एवं साहित्य के नए-नए आन्दोलनों को जन्म दिया। समाज सुधार, कला, साहित्य, संगीत, भूख, भाषा और यहाँ तक कि आन्दोलन के लिए आन्दोलन की जन्म भूमि भी कलकत्ता ही है। लेखक के विचार में कलकत्ते के भावुक लोग संगीन और संगीत की विद्या में एक समान दक्ष हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि सितारवादन के समान ही 303 से गोली चलाने में भी कुशल हैं।

लेखक दक्षिण कलकत्ता से ट्राम में बैठकर ठेठ उत्तर की ओर जा रहे हैं। सब कहीं भीड है, हलचल है, आन्दोलन है, नारे हैं, आक्रमण है, पुलिस हैं, लाठियाँ चलती हैं। लेखक ट्राम में बैठे थे। उन के खद्दर के कपडे और गाँधी टोपी देखकर एक आदमी पूछता है कि वे कांग्रेसी, प्रजासमाजवादी, कम्यूनिस्ट या हिन्दू सभाई में से कौन से हैं। लेखक उत्तर

देते हैं कि वे लेखक हैं, इन्सान हैं। वह आदमी पूछता है कि लेखक बनने या इन्सान बनने से क्या होता है? और आगे कहता है कि तुम को कुछ होना ही होगा।

कलकत्ते की भीड के बीच लेखक अपने को अत्यंत असहाय पाते हैं। लेकिन वही असहाय अकेलापन वक्ष में धुकधुकी पैदा करने पर भी उन्हें अच्छा लगता है। वे उतरकर भीड में घुस जाते हैं। अचानक उनके एक पूराने मित्र के हाथ का दबाव कंधे पर पडकर वे चौंक जाते हैं। मित्र उन्हें ग्राण्ड होटल के भीतर ले जाते हैं। मित्र ग्राण्ड होटल में रिसेप्शनिस्ट हैं।

होटल में पहुँचकर लेखक जहन्नुम से जन्नत पहुँचने का अनुभव करते हैं। होटल में सब कुछ राजसी, ऐश्वर्य और विलासिता का प्रतीक है। सब कुछ मूल्यवान, फर्नीचर, कालीन, लिफ्ट, बैरे और मोहक सुन्दरियाँ और इन सब को भोगनेवाले देशी-विदेशी यात्री। बाहर कलकत्ता नगर का नारकीय जीवन है। वहाँ सब कुछ है चाकू छुरेबाजी, वेश्यावृत्ति, भूख, आन्दोलन से लेकर कला, संस्कृति, शांति, जीवित और मृत लाशें तक। बंगाल सोने का देश है। दस-दस मील तक मनुष्यों के सैलाब व्याप्त है। वहाँ अजीबोगरीब पूर्वी बंगाल से शरणार्थी के रूप में आए अनेक लोग हैं और सब राज्यों के तरह तरह के लोग हैं।

कलकत्ता में सब कहीं भूख व्याप्त है। अन्न की भूख भी है और शरीर की भूख भी। लेखक की दृष्टि आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रोड पर अत्यंत शून्य भरी दृष्टि के साथ मूडी खाकर खडी होनेवाली एक स्त्री पर पड जाती है। उस स्त्री के चारों ओर कई व्यक्ति घिर आए हैं। यहाँ लेखक अलग-अलग जीवन स्तरों से जुडी हुई स्त्रियों का जिक्र करते हैं। इस नगर जवन में होटलों पर नाचने वाली, फुटपाथों पर धक्का देनेवाली सभी प्रकार की स्त्रियाँ हैं। अंत में केले नारियल और सुपारी के पेडों से धिरे एक गाँव में मित्र के साथ आए घटना की स्मृति के साथ 'जहाँ आकाश नहीं दिखाई देता' रिपोर्ताज समाप्त करते हैं। यहाँ लेखक ने उस घर की वधू के संकोच विहीन, द्विविधाविहीन शिष्टतापूर्ण व्यवहार का वर्णन किया है। इस रिपोर्ताज में धुमक्कड विष्णु प्रभाकर ने कलकत्ता नगर के जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन किया है।

कुरीति तोडो; परिवार नहीं

- अर्चना वर्मा

समकालीन हिंदी साहित्य के नए चेहरों में प्रमुख है अर्चना वर्मा। कहानी, कविता से लेकर आलोचना व स्त्री विमर्श तक सभी विधाओं में नियमित लेखन से अपना स्थान सदा के लिए बनाए रखनेवाली लेखिका है अर्चना वर्मा। पत्र आजकल हिंदी साहित्य के अविकसित विधाओं में ही गिने जाते है। लेकिन उसमें नए अंकुर फूट रहे है। 'एक पाती' नामक अर्चना वर्मा के संकलन का एक पत्र है "कुरीति तोडो, परिवार नहीं।" इसमें अपनी बेटी के साथ ममता से भरी हुई बातें ही नहीं बल्कि नारी संबंधी एक विकराल समस्या का परदाफाश भी लेखिका ने किया है।

अपनी बेटी को संबोधित करके लिखे पत्र में माँ दहेज कानून के बारे में बताकर यही स्पष्ट करती है कि वर्तमान भौतिक सुख सुविधाओं के कारण इंसान का जीवन कितना सस्ता हो गया है और समय के परिवर्तन के कारण कुछ लडकियाँ साहस बटोरकर दहेज लोभियों से शादी न करने का फैसला भी लिया है।

पत्र में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दहेज को असंज्ञेय अपराधों की श्रेणी में शामिल करके उसे ज़मानती बनाने का जो सुझाव आया है उसका ज़िक्र सबसे पहले दिया है। महिला को दहेज के कारण गंभीर किस्म की शारीरिक चोट या मानसिक आघात पहुँचने पर ही दहेज प्रताडना के मामले में संज्ञान लिया जाना चाहिए। कानून बनाने का उद्देश्य दहेज प्रथा समाप्त करना और महिलाओं के साथ मानवीय व्यवहार रूपी सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना है। दहेज की दिन पर दिन बढती माँग के कारण लडकियाँ प्रताडित हो रही है इसी से उनका बचाव आवस्यक है और सचाई यह है कि कानून भी दहेज लोभियों को डराने में पर्याप्त नहीं है।

दहेज कानून के बल पर इस कुप्रथा से छुटकारा चाहनेवाली लडकियाँ एक ओर है तो दूसरी ओर पैतृक संपत्ति पर हिस्सा न मिलने के कारण खुद दहेज माँगनेवाली लडकियाँ दूसरी ओर। लेकिन हमेशा यही होता है कि आकंठ डूबने के बाद ही लडकियाँ दहेज कानून में केस दर्ज कराती है।

विवाह एक सामाजिक बंधन है और उसका बुनियाद विश्वास पर आधारित है। लंबे संघर्ष के बाद ही दहेज कानून पारित भी हुआ था। फिर भी लडकियों की जान लेने या प्रताडित होने की घटनाएँ बढती जा रही है। लेकिन दहेज से हुई मौत के केस लंबित पडे है या कुछेकों सुनवाई हो रही है या बहुत इने गिने को ही सजा मिल गया है। लेखिका अपने पत्र में वर्तमान कानून को बदलने की चेष्टा कभी नहीं करती। लेकिन मानसिकता के परिवर्तन पर काफी बल देती है।

बेटी को लिखी चिट्ठी के अंतिम भाग पर माँ अपना मत खुलकर प्रकट करती है। वे जानती है कि लडकियों व महिलाओं की स्थिति अब काफी खराब है। उन्हें पुरुषों का दर्जा तो ज़रूर मिलना चाहिए मगर उसको बरसों ज़रूर लगेंगे। शादी से पहले पैसों केलिए स्त्री पिता या भाई पर निर्भर रहती है तो शादी के बाद में पिता और भाई पति और पुत्र में परिवर्तित हो जाता है। जो भी हो पुरुषों पर निर्भर होना ही पडता है। और पग पग पर प्रताडना सहना पडता है। इसलिए दहेज कानून को बदलने या हल्का करने के बजाय लडकियों को लडकों की भाँति पैतृक संपत्ति में समान अधिकार देने का कानून बनाना चाहिए। इसका दो गुण है। एक, लडकियों को आर्थिक अधिकार प्राप्त होगा और दूसरा दहेज की कुप्रथा पर रोक लग जाएगी। नौकरी या रोज़गार करनेवाली स्त्रियाँ एक हद तक सुराक्षित है यह भी सही है।

अंत में बेटी को सुझाव देती हुई माँ बताती है कि लडकियों को दहेज रूपी कुरीति से लडना ज़रूर चाहिए। मगर परिवार को तोडकर नहीं, उसे बनाए रखने की कोशिश में कंधे से कंधा मिलाकर पुरुषों के साथ चलकर ही समर करना चाहिए। उसकेलिए लडकियों को सबसे पहले शिक्षा प्राप्त करना चाहिए और आर्थिक दृष्टि से अपने आप को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में काम करना भी चाहिए।

"कुरीति तोडो, परिवार नहीं।" नामक पत्र में परिवार को सुरक्षित रखने के बारे में भी लेखिका बताती है। दहेज प्रताडना के मामलों में वर के घरवालों को फँसाने का प्रयास कभी नहीं होना चाहिए। अच्छे भले परिवार को बिखरने नहीं देना है। मगर इस कुरीति के खिलाफ पूरी ताकत से लडना है और दहेज मुक्त, दहेज प्रताडना से मुक्त समाज का निर्माण करना चाहिए। नारी के वर्चस्व के बरकरार रखने के प्रयत्न में पूर्ण रूप से शामिल होना चाहिए। तभी हम दहेज रहित समाज की स्थापना कर सकेंगे।

Module IV

रीढ की हड्डी

- जगदीश चन्द्र माथुर

सुधारवादी नाटकों की पुरानी शैली को परिमार्जित कर नए दृष्टिकोण के साथ उसे पेश करनेवाले नाटककार है जगदीश चन्द्र माथुर। हिंदी एकांकी कला को परिष्कृत करने का श्रेय भी माथुराजी को ही प्राप्त है। रीढ की हड्डी माथुरजी का विख्यात व्यंग्य एकांकी है। विद्यार्थी जीवन के झूठ फरेब तथा शिष्ट कहलाने वाले समाज के आन्तरिक खोखलेपन पर यह एकांकी सबल व्यंग्य करता है। इसी के साथ नारी की विडंबनात्मक स्थिति का परदाफाश भी एकांकीकार करते हैं।

एकांकी की शुरूआत और विकास व समापन रामस्वरूप के घर में ही संपन्न होता है। रामस्वरूप नायिका उमा का बाप है और प्रेमा माँ। एकांकी के आरंभ में घर को सजानेवाले रामस्वरूप और नौकर को ही हम देखते है। वे दोनों कमरे को सजा रहे हैं और बाद में प्रेमा का प्रवेश होती है और पति-पत्नी के वार्तालाप से पता चलता है कि उनकी बेटी उमा को देखने के लिए शंकर और उसके पिताजी गोपालप्रसाद आ रहे हैं। लेकिन प्रेमा की बात से एक सचाई सामने आती है कि उमा इस शादी से खुश नहीं है। यहाँ तक कि सज-धज के लडके के सामने आने के लिए भी वह तैयार नहीं है। प्रेमा तो रामस्वरूप को ही इसका ज़िम्मेदार ठहराते है कि पिता ने ही उसे पढ़ा लिखाकर बिगाडा था। जैसे प्रेमा के शब्दों में "इंट्रेस ही पास करा देते, लडकी अपने हाथ रहती, और इतनी परेशानी न उठानी पडती।" तभी रामप्रसाद अपनी पत्नी को डाँटता है क्योंकि वे इस बात को लडकेवालों से छुपाकर रखना चाहते है। क्योंकि गोपालप्रसाद अपने बेटे के लिए पढी लिखी लडकी को चाहता नहीं है और रामस्वरूप उस घर में अपनी बेटी को भेजना भी चाहते है। फिर भी उनके दकियानूसी विचारों का विरोध भी करते है। जैसे वह प्रेमा से कहते है "गुस्सा तो मुझे बहुत आता है इनके दकियानूसी खयालों पर। खुद पदे लिखे है, वकील है, सभा सोसाइटियों में जाते है, मगर लडकी चाहते है ऐसी कि ज्यादा पढी लिखी न हो।" शंकर भी बाप का बेटा निकलता है। खुद वह मेडिकल कॉलेज में पढता है मगर शादी का सवाल तो दूसरा है।

राम स्वरूप की दृष्टि में गोपालप्रसाद और उनका बेटा शंकर समाज में ऊँचे ओहदे रखनेवाले है इसलिए उनसे शादी के ज़रिए एक संबंध स्थापित करना बिलकुल उचित है। लेकिन अपनी बेटी शिक्षित है इस बात को छिपाकर शादी की तैयारी करना एक उत्तम बाप के लिए योग्य बात नहीं है, लेकिन समाज में ऊँचा स्तर प्राप्त करने की लालसा के कारण ही रामप्रसाद ऐसी गुस्ताख़ी करते हैं। और असल में राम प्रसाद अपनी बेटी को बहुत चाहते हैं इसलिए ही उमा को बि.ए तक पढाया।

नौकर रतन सूचना देते हैं कि घर के मेहमान आ रहे हैं, तभी प्रेमा को याद आया कि टोस्ट बनाने के लिए मक्खन नहीं इसलिए वह रतन को मक्खन लाने के लिए भेजती है। कमरा तो उमा के बाजों से और तख्त से सजकर रखा है और बाकी सारा इंतज़ाम हो चुका है। उमा तैयार नहीं है। यही रामस्वरूप के घर की हालत है। इसी माहौल पर गोपालप्रसाद और शंकर प्रवेश करते है।

गोपालप्रसाद और शंकर का तहे दिल से स्वागत होता है। रामस्वरूप के साथ वे दोनों बाते करते है। शंकर की पढाई के बारे में पूछने पर पिता और बेटा बक बक करता है और साल दो साल में कोर्स पूर्ति की सूचना भी वे देते है। इसके बाद आज के और पुराने ज़माने के बच्चों के स्वास्थ्य के बारे में, पढाई के बारे में, खाने पीने के बारे में बातें होती है। अंत में गोपालप्रसाद कहते है "अच्छा साहब, फिर "बिज़िनेस" की बातचीत हो जाए। इस बीच रामस्वरूप चाय लेने अंदर जाते है। तब गोपाल प्रसाद शंकर से कहते है कि मकान वकान तो ठीक है, आदमी भला है, लडकी को देखना बाकी है। और शंकर को डाँटते है और कहते है "झुककर क्यों बैठते हो, ब्याह तय करने आये हो कमर सीधी करके बैठो"। इतने में रामस्वरूप चाय लेकर आते है और चाय के साथ चर्चा खुबसूरती पर टिकते है और गोपालप्रसाद का मत है शादी में खुबसूरती एहम हिस्सा है, घर की औरतें तभी लडकी को स्वीकार करेंगी।

इसी बीच गोपालप्रसाद साफ साफ बताते है कि उन्हें पढी लिखी लडकी नहीं चाहिए। हद से हद मैट्रिक पास होना है। मर्दों को पढना है काबिल होना है। मर्दों के समान औरतों को आगे नहीं आना चाहिए। उनकी वाणी के अनुसार "जनाब मोर के पंख होते है, मोरनी

के नहीं शेर के बाल होते है शेरनी के नहीं।" यहाँ बाप बेटे का स्त्रियों के प्रति रवैया स्पष्ट दिखाई देता है।

पान लेकर जब उमा आती है तो दोनों बाप-बेटा उसके नाक पर रखे चश्मे को देखकर चौंक जाते है। रामस्वरूप कहते है कि आँखों के दुःखने के कारण कुछ दिनों के लिए रखा है। उमा की गर्दन झुकी हुई है। आगे पिता के निर्देशानुसार उमा तख्त पर बैठती है और अपना बाजा बजाकर मीरा का पद गाती है। गाते गाते वह ऊपर देखती है और शंकर को देखते ही गाना बन्द करती है और जाने को उठती है। लेकिन पिता के ज़िद के कारण फिर वहीं बैठती है। आगे गोपालप्रसाद यह भी पूछते है कि पेंटिंग जानती हो, सिलाई जानती हो वगैरह वगैरह। सभी प्रश्नों का उत्तर रामस्वरूप देते है, उमा चुप है। तो गोपालप्रसाद को यह बिलकुल अच्छा नहीं लगा। बहुत ज़िद करने के बाद जब उमा मुँह खोलती है तब सब चौक जाते है। वह कहती है "जब कुर्सी-मेज़ बिकती है तब दूकानदार कुर्सी-मेज़ से कुछ नहीं पूछता, सिर्फ खरीदार को दिखला देता है, पसन्द आ गई तो अच्छा है, वरना।" आगे वह यह भी बताती है कि लडकियों के भी दिल है, उसे भी चोट लगती है। वे कोई भेड बकरियाँ नहीं है जिसे कसाई अच्छी तरह देख-भालकर खरीदते है। गोपाल प्रसाद ताव में आते है मगर उमा रुकनेवाली नहीं थी। वे आगे शंकर का पोल भी खोलती है। उनका होस्टल की नौकरानी से नाजायज़ संबंध था। और वह हमेशा लडकियों के होस्टल के इर्द गिर्द घूमता रहता है वहाँ से हमेशा भगाया भी जाता है।

गोपालप्रसाद और शंकर को तभी पता चलता है कि उमा कोई मामूली लडकी नहीं है। वह पढी लिखी समझदार लडकी है। तब इसके उत्तर के रूप में उमा कहती है 'मैं ने बी. ए. पास किया है, कोई पाप नहीं किया, कोई चोरी नहीं की, और न आपके पुत्र की तरह ताक-झांककर कायरता दिखाई"। गोपाल प्रसाद क्रोधित हो जाते है और अपने बेटे शंकर को लेकर वहाँ से जाने की तैयारी करते है। उसने रामस्वरूप पर यह आरोप भी लगाते है कि लडकी की पढाई की बात छुपाकर उन्होंने दगा किया है। उमा अंत में यह भी बताती है कि "घर में जाकर ज़रा पता लगाइएगा कि आपके लाडले बेटे के "रीढ की हड्डी" भी है या नहीं। वे दोनों वहाँ से चले जाते हैं।

रामस्वरूप विवश होकर बैठ जाते है और प्रेमा अंदर से भागकर आती है। धीरे धीरे उमा की हँसी सिसकियों में बदल जाती है। बेटी की सिसकी सुनकर रामस्वरूप सचेत हो जाते है। और इसी समय रतन मक्खन लेकर आता है।

एकांकी के प्रमुख, सशक्त एवं नायिका पात्र है उमा। वह बि.ए तक पढी एक समझदार लडकी है। वह एक अच्छी गायिका थी, पेंटिंग में सिलाई में माहिर। पिता व माता के अनुसरण करनेवाली लडकी भी है। इसी कारण से ही वह शंकर के सामने जाने के लिए तैयार हो गयी। लेकिन शंकर को देखते ही वह गंभीर हो गयी। और अपनी सारी शक्ति को समेटकर वह गोपालप्रसाद का विरोध करती है। अंत में उसका रोना निरीहता का सूचक है। यानी पढी लिखी, समझदार और धीर होने के साथ साथ भोली भाली निरीह लडकी है। यह भी सच है कि वह आधुनिक सशक्त नारी का प्रतीक भी है।

शंकर पिता के पदछापों पर चलनेवाला एक लडका है। उसका कमर हमेशा छुकी हुई है। इसलिए दोस्त मज़ाक करते है कि शंकर का बैक बॉन नहीं है। बी.एस.सी के बाद वह डाक्टरी के लिए पढ रहा है। मगर वह स्त्रियों के साथ नाजायज़ संबंध रखते है। लेडीज़ होस्टल के पीछे घूमते है। भगाए जाते है। शंकर कायर और कुटिल मगर पिता का लाडला बेटा है।

गोपालप्रसाद खुद पढे लिखे वकील है मगर दकियानूसी विचारधारा के व्यक्ति है। अपने डाक्टरी के पढने वाले बेटे लिए लडकी ढूँढती है मगर लडकी को पढी लिखी नहीं होना चाहिए। शादी उनकेलिए सिर्फ एक बिज़िनेस है। बहुएँ उनकेलिए घर को सजाने का साधन है। इसप्रकार गोपालप्रसाद एक विचित्र व घृणा योग्य पात्र है।

रामस्वरूप उमा के पक्ष में है इसलिए उसे पढाते हैं, मगर बेटी की शादी की बात जब आयी तब वे भी पुराने खयालों के हो गए। लेकिन अपनी बेटी की धीरता पर अंत में वह मुग्ध हो जाते है और रोती हुई बेटी के पीछे खडे दिखाई देते है। प्रेमा तो पहले से ही लडकियों को पढाने के खिलाफ थी। मगर उमा की पढाई में अडचन तो उसने भी नहीं पैदा की।

कुल मिलाकर देखें तो माथुरजी का एकांकी रीढ की हड्डी समाज के खोखलेपन को व्यक्त करने में सफल निकलता है। साथ ही साथ शादी के बिज़िनेस में खरीदी व बेची जानेवाली भोली लडकियों को उसके खिलाफ लडने की प्रेरणा भी देते है।

अंडे के छिलके

- मोहन राकेश

आधुनिक हिन्दी नाटक की दुनिया में सबसे जटिल, रोचक और दिलचस्प रचनाकार मोहन राकेश ने अपनी मातृभाषा पंजाबी को छोड हिन्दी को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और साहित्य की सभी विधाओं में अद्‌भुत कीर्तिमान स्थापित किए। इनके प्रसद्ध नाट्य रचनाएँ है- आषाढ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे अधूरे, पैर तले की ज़तीन और अंडे के छिलके। अंडे के छिलके नाम से राकेश का एकांकी संग्रह उनकी मृत्यू के पश्चात् प्रकाशित हुआ।

अंडे के छिलके पारिवारिक वातावरण से युक्त एक हास्य एकांकी है। संपूर्ण एकांकी जमुना के परिवार पर केन्द्रित है। जमुना के तीन बेटे- माधव, गोपाल और श्याम और बहुएँ-राधा और वीना और स्वयं जमुना एकांकी के पात्र हैं। इस परिवार में एक ओर पुराने संस्कारों की प्रबलता है तो दूसरी ओर होने वाले नए परिवर्तनों का प्रभाव। जमुना और माधव पुराने संस्कारों का प्रतिनिधित्व करनेवाले हैं तो गोपाल, स्याम, वीना आदि नए परिवर्तनों से प्रभावित। गोपाल की पत्नी वीना प्राचीन विश्वासों को अंधे होकर स्वीकारने के लिए कतई तैयार नहीं है। दूसरी तरफ एकांकीकार राकेशजी ने दिखाया है कि कैसे परंपरा और आदर्श का ढिंढोरा पीटनेवाले लोग सतह के नीचे बिल्कुल वही के वही होते हैं अर्थात् गुनहगार। एकांकी में माधव की पत्नी अर्थात् बडी बहू इस कोटि की है। राधा रामायण के बहाने चन्द्रकांता संतति पढती है। श्याम का छूपकर अंडे खाना, गोपाल का लूके छिपे सिगरेट पीना सब इस आडंबर के अंतर्गत आते हैं।

एकांकी के आरंभ से लेकर समापन तक के सभी कार्य गोपाल और श्याम के घर पर ही संपन्न होते हैं। आरंभ में श्याम और वीना अर्थात् देवर और भाभी के बीच संवाद चलता है और कथावस्तु का विकास दिखाई पडता है। दोनों मिलकर अंडे का हलुआ बनाने का

निर्णय लेते हैं। लेकिन उस घर में अंडे का नाम लेने से ही मुँह भ्रष्ट हो जाएगा। दूसरी ओर उसी घर में रोज़ लूके छिपे अंडे का नाश्ता होता है। श्याम और गोपाल रोज अंडे खाते हैं।

एकांकी में चित्रित परिवार के राधा, श्याम और गोपाल सब एक दूसरे की पोल की रक्षा करनेवाले हैं। उस घर में छोटी बहु अर्थात् वीना एकमात्र आडंबरहीन नवयुवती है। वह इस घर में नई बहू बनकर हाल ही में आयी है। वह दुहरेपन और दिखावा को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। इसलिए वह रुढिग्रस्त विचारों एवं विश्वासों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। एकांकी में पुराने और नए संस्कारों के बीच संघर्ष है। यहाँ एकांकीकार ने आधुनिक जीवन मूल्यों में पोल का अध्ययन किया है। हास्य स्थितियों के द्वार राकेशजी ने आडंबर के प्रति वितृष्णा व्यक्त की है। उस घर में सब लोग क्या-क्या कर रहे हैं और घर में क्या-क्या हो रहा है यह प्रत्येक व्यक्ति जानता है। पुराने संस्कारों के प्रतिनिधित्व करनेवाले जमुना और माधव सब कुछ जानते हैं। लेकिन जान बूझकर अनजान बने रहने में ही अपने प्राचीन जीवन मूल्यों की कुशल समझते हैं।

'अंडे के छिलके' में नए और पुराने संस्कारों एवं जीवन मूल्यों के बीच टकराव है किन्तु कटुता नहीं। समस्या को बडे स्नेह और सद्भाव के साथ हल्के ढंग से विश्लेषित किया गया है। पुरानी और नई पीढी के बीच विद्रोह की भावना के स्थान पर सद्भाव और सहनशीलता है। गोपाल के मोजे में अंडे के छिलके रखने की स्थिति से, गुटका रामायण में राधा 'चंद्रकांता संतति' छुपाने से, फ्राइंग पैन पर ब्लाउज ढँक देने से पूरे एकांकी में हास्य एवं हल्के फुल्के वातावरण का निर्माण होता है। लेखक की भाषा-शैली नितांत सहज, सरल और आत्मीय है। संक्षेप में 'अंडे के छिलके' के माध्यम से मध्यवर्गीय जीवन के पोल का पर्दाफाश करने में एकांकीकार अत्यंत सफल हुए हैं।

महाभारत की एक साँझ

- भारत भूषण अग्रवाल

हिन्दी के प्रयोगवादी कवि के रूप में विख्यात भारत भूषण अग्रवाल बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। कवि, नाटककार, उपन्यासकार, निबंधकार तथा अनुवादक के रूप में

अपने हिन्दी साहित्य की सेवा की है। 'महाभारत की एक साँझ' उनका एक सफल एकांकी है। प्रस्तुत एकांकी यद्यपि रेडियो नाटक के रूप में ही मुद्रित हुआ है यह सर्वथा अभिनेय है और इसका रंगानुकूल रूपांतर सहज ही किया जा सकता है। इस नाटक का आधार यद्यपि महाभारत की पौराणिक घटना पर स्थित है, तथापि नाटककार की दृष्टि की आधुनिकता स्पष्ट है। एकांकी में भारत भूषण जी ने महाभारत के दुर्योधन (सुयोधन) के मन के अंतर्द्वन्द्वों को उजागर किया है। दुर्योधन की चेतना में बैठकर एकांकीकार हमारी परिचित वस्तु को एक नए प्रकाश में सामने रखता है। इस एकांकी में अच्छे बुरे की रूढ मान्यताओं को ज्यों का त्यों न स्वीकार करके मानसिक प्रक्रियाओं के उद्घाटन द्वारा कारण-कार्य की एक नई श्रृंखला प्रस्तुत करता है।

एकांकी में एक ओर आत्मरक्षा के लिए द्वैतवन के सरोवर में घुसे हुए दुर्योधन हैं तो दूसरी ओर पांडव भीम और युधिष्ठिर हैं। एकांकी में पांडव और दुर्योधन दोनों अपनी अपनी जगह पर अपने किए कराए का स्पष्टीकरण देते हैं और अपना-अपना समर्थन में मानसिक प्रक्रियाओं के विश्लेषण के कारण वे निस्सन्देह आधुनिक कहे जा सकते हैं। मगर सत्य क्या है? वह कहाँ छिपा हुआ है? महाभारत के लिए कारणीभूत सत्य दुर्योधन के इन अधूरे शब्दों में हैं-मेरे पिता अंधे क्यों हुए। नहीं तो...नहीं तो।' धर्मराज अर्थात् युधिष्ठिर के धर्म पर निरंतर प्रश्न चिह्न लगाता जाने वाला दुर्योधन एकांकी में मरणोन्मुख है पर अपनी हार मानने को तैयार नहीं।

परंपरा से बंधी मान्यताओं को ज्यों का त्यों न स्वीकारकर मानसिक प्रक्रियाओं द्वारा पाठक की संवेदना को एक नया आयाम देना ही 'महाभारत की एक साँझ' में एकांकीकार का उद्देश्य है। महाभारत में परंपरागत खल के रूप में चित्रित दुर्योधन के पक्ष में भी हमारी संवेदना को छूकर जगा देना भारत भूषण जी की बडी सफलता है। मनोवैज्ञानिक हेतुओं का अन्वेषण करने की आधुनिक प्रवृत्ति का एक परिणाम तो यह है कि पाठक पक्ष या विपक्ष में निर्णय को स्थापित करना सीखता है। धर्मराज अर्थात् युधिष्ठिर के धर्म पर प्रश्नचिह्न लगाना और दुर्योधन का सुयोधन में परिणत हो जाना इस बात का दृष्टांत है। पाठक अपनी संवेदना को विस्तृत करके दुर्योधन जैसे पात्रों को भी अपनी संवेदना देता है जिन्हें पहले उसका पात्र नहीं मानता था। 'महाभारत की एक साँझ' में दुर्योधन मरणोन्मुख है पर अपनी

हार मानने को कदापि तैयार नहीं। वह एक वीर योद्धा के रूप में अंतिम क्षण में भी युधिष्ठिर से टक्कर लेते हुए वीर गति पाने को तैयार है।

प्रस्तुत एकांकी में दुर्योधन को अपने लिए पद नहीं मिलने का दुःख है और अपने पिता के अंधे होने का दुःख भी है। एकांकी में दुर्योधन और युधिष्ठिर के संवादों में अभिव्यक्त वैचारिक संघर्ष की बडी भूमिका होती है। एकांकी में दुर्योधन की चेतना हमारे सामने एक नए बिम्ब उपस्थित करती है। खल के पक्ष में पाठक की संवेदना को झकझोरना एकांकीकार की सफलता है। प्रस्तुत एकांकी में यथार्थ चित्रण की अपेक्षा काव्य-तत्व और भाव सत्य अधिक है।